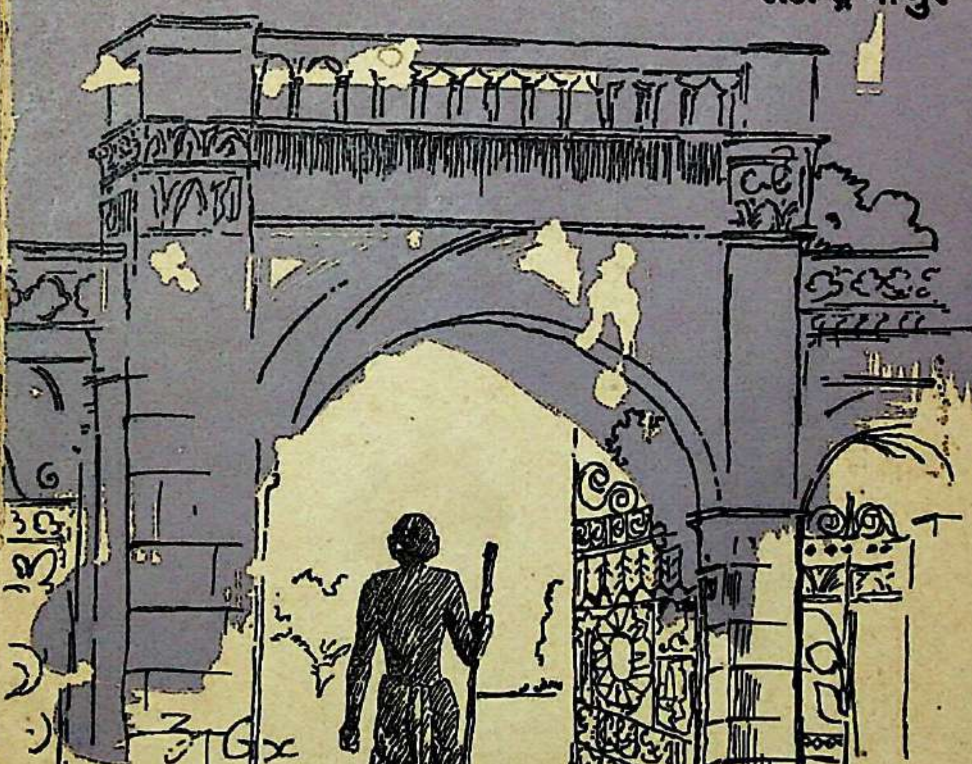
गांधीजी की अन्तिम जेल-यात्रा

राजेन्द्र माथुर



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

26.6.82

गांधीजी की अंतिम जेल-यात्रा

आगाखां महल तथा उसमें गांधीजी के बंदी-वास की कहानी

लेखक
राजेन्द्र माथुर

१९७१
सस्ता साहित्य मण्डल
कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट का
संयुक्त प्रकाशन

गांधी स्मारक निधि राजघाट,
नई दिल्ली के सहयोग से

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

●

पहली बार : १९७१
मूल्य : पांच रुपये
संशोधित मूल्य ...6/-

●

मुद्रक
नई दुनिया प्रेस
इन्दौर

प्रकाशकीय

गांधीजी ने आगाखां महल में अपना अंतिम कारावास भोगा था और इसी महल में उनके निजी सचिव महादेवभाई तथा उम्रभर की साथिन कस्तूरबा ने प्राण त्यागे थे। यह महल गांधीजी के लिए उन बंदी-गृहों से एकदम भिन्न था, जिनमें उन्होंने अपने जीवन के कई मास व्यतीत किये थे।

गांधीजी की इच्छा थी कि यह महल राष्ट्रीय स्मारक का रूप ग्रहण कर ले। महल के साथ गांधीजी के संबंधों तथा उनकी इच्छा को ध्यान में रखते हुए गांधी स्मारक निधि ने आगाखां से इस महल को प्राप्त करने की चर्चा की। हर्ष की बात है कि गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में ही महल को अपेक्षित रूप देने में सफलता मिल गई। २२ फरवरी १९६९ को आगाखां ने एक औपचारिक समारोह में उसे गांधी स्मारक निधि को सौंप दिया।

आगाखां महल अब एक राष्ट्रीय स्मारक बन गया है। यह पुस्तक इस स्मारक और गांधीजी के संबंधों को विश्लेषित करने के लिए ही लिखी गई है।

कुछ समय पूर्व 'मण्डल' से महात्मा गांधी के इस अंतिम कारावास के इक्कीस महीने का विस्तृत विवरण 'बापू की कारावास कहानी' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तक पाठकों को बहुत पसंद आई और उसके तीन संस्करण निकल गये। डा० सुशीला नैयर ने अपनी पुस्तक डायरी के रूप में लिखी है। प्रस्तुत पुस्तक उस काल के विश्लेषण तथा आगाखां महल से संबंधित है। इसमें पाठकों को बड़े सरस ढंग से आगाखां महल का परिचय कराया गया है, साथ ही उन इक्कीस महीनों की प्रमुख घटनाओं का विवेचन इस प्रकार किया गया है कि वे घटनाएं चलचित्र की भांति आंखों के आगे घूम जाती हैं।

लेखक की शैली जितनी रोचक है, उतनी ही प्रभावशाली भी है। अतः उन्होंने जो चित्र इस पुस्तक में दिये हैं, वे हमारे स्वतंत्रता-संग्राम के एक महत्वपूर्ण अध्याय को हमारे सामने खोल कर रख देते हैं।

आशा है, पाठक पुस्तक को उपयोगी पायेंगे।

विषय-सूची

गांधीजी की
अंतिम
जेल-यात्रा

●

कारावास: तीन दौर

महात्मा गाँधी ने भारत के जेलखानों में जो २०८९ दिन गुजारे, वे लगभग सबके सब पूना के आसपास बीते हैं। अंग्रेज उन्हें पश्चिम भारत में कहीं गिरफ्तार करते – साबरमती में या दाँडी में या बम्बई में – और यरवडा जेल के चिरपरिचित अहाते में भेज देते। ६९ महीनों के कुल कारावास में से ४७ माह गाँधीजी ने यरवडा में गुजारे, और इस जेल को वे यरवडा मन्दिर कहने लगे। सिर्फ आखिरी जेल यात्रा के दौरान उन्हें यरवडा नहीं भेजा गया। पता नहीं क्यों? इस आखिरी यात्रा के हेतु आगा खाँ का महल तैयार किया गया, और उसमें गाँधीजी और उनके साथियों को रखा गया।

यरवडा पूना से तीन मील दूर एक कस्बा है। कुछ ही आगे चलकर आगा खाँ का विख्यात महल है। आगा खाँ महल में गाँधी २१ महीने रहे। यरवडा और आगा खाँ की चहारदीवारी में गाँधीजी का सारा जेल जीवन सिमटा हुआ है।

अंग्रेजों ने जो जेलखाने भारत में बनवाए, उनमें यरवडा का नम्बर पहला है। आज वह शायद एशिया का सबसे बड़ा जेल है। ढाई हजार कैदियों का वह अच्छा खासा उपनगर है। संगीन अपराधी वहाँ रखे जाते हैं और राजनैतिक नेता भी। १८९७ में जब बाल गंगाधर तिलक को कड़ी मेहनत की सजा हुई, तब वे यरवडा में रखे गए। उनके जेल दस्तावेज अब एक एलबम में जड़े हैं। इस

एलबम में लगी फोटो प्रतिलिपियाँ हमें बताती हैं कि जवाहरलाल नेहरू जब यरवडा आए, तब वे अपने साथ कितने धोती और कुर्ते और क्या-क्या लाए, और सुभाषचन्द्र बोस की जेब में जेल आते समय कितने पैसे थे। इसी जेल में चाफेकर बंधु फाँसी के तख्ते पर झूल गए।

यरवडा के जेलर पहले अंग्रेज होते थे। इस जेल की अध्यक्षता करने वाला अफसर सख्त और काबिल माना जाता था, और प्राय: बम्बई की जेलों का इन्स्पेक्टर जनरल बनता था। लेकिन गाँधीजी को जब आगा खाँ महल में रखा गया, तब तक जेलों का काफी भारतीय-करण हो चुका था। जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल मदन गोपाल भंडारी (सी. आई. ई., आई. एम. एस.) थे, जो पहले फौज में डॉक्टर थे, फिर जेल के महकमे में आए, और अन्तत: बम्बई के सर्जन जनरल के रूप में सेवा निवृत्त हुए। उनका बंगला भी यरवडा में ही था, और इस प्रकार वे जेल की और महल की निगरानी कर सकते थे।

आगा खाँ महल-कारावास के सुपरिंटेंडेंट थे खानबहादुर, ए. ए. कटेली। जेलों में ही उन्होंने जिन्दगी शुरू की, और अपनी सेवाओं के लिए अंग्रेजों से उन्हें खानबहादुर का खिताब मिला। गाँधीजी का दल आगा खाँ महल की पहली मंजिल में रहता था और ए. ए. कटेली अकेले दूसरी मंजिल में। वे भी एक तरह से जेल में ही थे। उनकी टहल चाकरी के लिए और खाना बनाने के लिए जवानों की कमी नहीं थी, लेकिन घुलमिल कर बात करने वाला उन्हें कोई नहीं था। गाँधीजी की दो वर्षगाँठों पर कटेली ने ७३ और ७४ रुपये बापू को भेंट किए, और जब उनकी रिहाई हुई तब उन्होंने ७५ रुपये अर्पित किए। अंग्रेजों ने भी आगा खाँ महल में उनकी सेवाओं को उल्लेखनीय समझा, और इन्हें ओ. बी. ई. का खिताब दिया गया।

गाँधी जैसे नेताओं के साथ चतुर नम्रता से पेश आने वाले जेलरों की एक श्रेणी अंग्रेजों ने बना ली थी। गाँधीजी जब १९३२ में यरवडा

में थे, तब भी मदनगोपाल भंडारी उनके साथ थे। तब के विलायती और अमरीकी अखबारों की कतरनें और गाँधीजी के पत्रों की प्रतिलिपि डॉक्टर भंडारी ने सहेज कर रखी है। ए.ए. कटेली पारसी हैं और वे गाँधीजी से गुजराती में बात कर सकते थे। पारसियों की तरह वे मृदुभाषी किन्तु दृढ़ रहे होंगे।

गाँधीजी यरवडा में पहली बार २१ मार्च १९२२ को आये। उनके खिलाफ एक ऐतिहासिक मुकदमा मिस्टर ब्रूमफील्ड की अदालत में चला था, जिसमें ब्रूमफील्ड और गाँधीजी ने एक दूसरे को आदर देने की प्रतिस्पर्धा सी कर ली थी। जज ब्रूमफील्ड ने गाँधीजी को छः साल की सजा सुनाई और गाँधीजी साबरमती जेल से यरवडा ले आये गए।

अंग्रेजों की अदालत में यह गाँधी का पहला और अन्तिम सार्वजनिक मुकदमा था। इसके बाद अंग्रेजों ने कभी उन पर खुला मुकदमा नहीं चलाया। अधिकांश समय तो वे बिना कारण बताए ही गिरफ्तार किए जाते रहे और अकारण उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया। अगर १९२२ में उन्हें धारा १२४ ए के अन्तर्गत गिरफ्तार किया गया था, तो १९३० और ३२ में उन्हें गिरफ्तार करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जमाने के कुछ कानून झाड़ पोंछकर बाहर निकाले गए और १८२७ के कायदों का एक शताब्दी बाद उपयोग किया गया। १९४२ में अन्तिम बार जब गाँधीजी गिरफ्तार किए गए, तब युद्ध चल रहा था और सारे देश में अध्यादेशों का राज था। भारत रक्षा नियम के अन्तर्गत अंग्रेजों ने बिना मुकदमे के फिर गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया।

गाँधीजी जब पहली बार यरवडा में आए, तो उनके साथ आम कैदियों जैसा निर्मम व्यवहार किया गया। उनकी ऊंचाई नापी गई; पाँच फुट पाँच इंच। उनके शरीर पर पहचान के निशान खोजे गए—

दाहिनी जाँघ पर दाग, दाहिनी आँख के नीचे मस; बाईं कुहनी के नीचे दाग ! रोज रात को ताला लगाने के पहले उनकी खानातलाशी होती और हालाँकि वे सिर्फ घुटने के ऊपर तक धोती पहनते थे, लेकिन उनके पैरों को जेलर छूकर देखता और उनके कम्बलों को टटोलता था। उनके बर्तन जूतों से ठुकराए जाते। जब वे आए, तो उन्हें चरखा नहीं लाने दिया गया, हालाँकि उन्होंने प्रति दिन कताई करने की शपथ खाई थी। गर्मी होते हुए भी उन्हें कोठरी के बाहर नहीं सोने दिया जाता, और तकिये की जगह उन्हें अपने कपड़ों की गठरी बनाकर रखनी पड़ती। नींबू काटने या डबलरोटी के टोस्ट बनाने के लिए उन्हें चाकू उपलब्ध नहीं था, क्योंकि चाकू एक घातक हथियार है। जब उन्होंने शिकायत की, तो चाकू एक वार्डर के जिम्मे कर दिया गया और यह बन्दोवस्त किया गया कि गाँधीजी को जब जरूरत हो, तब चाकू ले लें और काम खत्म होने पर लौटा दें। देवदास गाँधी और राजगोपालाचारी जब मिलने गए, तो गाँधी को उनसे खड़े-खड़े ही मिलना पड़ा, और जेल अधीक्षक बीच-बीच में उनकी बात काटते रहे। साल में चार चिट्ठियाँ लिखने की उन्हें इजाजत दी गई, जिनमें से दो चिट्ठियों का भारी सेंसर हुआ, तो गाँधीजी ने लिखना छोड़ दिया।

ऊपर की कई असुविधाएँ शीघ्र दूर हो गईं। चरखा आ गया, तकिये मिल गए, बाहर सोने की इजाजत मिल गई, जेलरों का बर्ताव सुधर गया। पहली बार गाँधी जैसा कैदी उनके जेल में आया था; शायद वे समझ नहीं पा रहे थे कि उन्हें कैदी जैसा अपमान दें या नेता का सम्मान दें। लेकिन कुल मिलाकर १९२२ से २४ तक की उनकी जेल यात्रा कष्टमय नहीं थी।

गाँधीजी ने इस यात्रा में भीषण पढ़ाई की। उन्होंने अध्ययन का एक टाइम टेबल बनाकर शुरुआत की और डेढ़ सौ किताबें पढ़ गए। गुजराती में पूरा महाभारत और षड्दर्शन उन्होंने पढ़े, अंग्रेजी में

मनु-स्मृति और उपनिषद् पढ़ गए, गीता पर शंकर, ज्ञानेश्वर, तिलक और अरविन्द के भाष्य पढ़े और धर्मों का इतिहास पढ़ा। और भी राजनैतिक सामाजिक पोथे उन्होंने बाँचे। लेकिन इससे उनकी मूल दृष्टि में कोई अन्तर नहीं पड़ा। इतिहास के बजाय पुराण उन्हें अधिक पसन्द आए। हिन्दू पूर्वजों ने इतिहास की जो उपेक्षा की, उसे उन्होंने जायज ठहराया और कहा कि महाभारत में जो है, वह इतिहास में नहीं। इतिहास में नाम और स्थान हैं, जबकि महाभारत में शाश्वत सत्य है।

जनवरी १९२४ में गाँधीजी को गंभीर अपेंडिसाइटिस हो गया और उन्हें पूना के ससून अस्पताल ले जाना पड़ा। १२ जनवरी की रात दस बजे जब उन्हें आपरेशन टेबल पर रखा गया, तो बिजली गिरने से रोशनी गुल हो गई और नर्स के हाथों में दबा फ्लैश लाइट बुझ गया। तब लालटेनों की रोशनी में ऑपरेशन हुआ और वह सफल हुआ। ५ फरवरी को गाँधी रिहा कर दिए गए। तब तक असहयोग समाप्त हो चुका था और कांग्रेस कौंसिलों में प्रवेश का निर्णय कर चुकी थी।

यरवडा में दूसरी बार गाँधीजी मई १९३० में आए। चौंतीस दिन की २४० मील लम्बी पदयात्रा के बाद वे समुद्र के किनारे पहुंचे थे और ६ अप्रेल को उन्होंने गैर कानूनी नमक बनाया था। एक महीने तक नमक सत्याग्रह पूरे जोश के साथ चलता रहा। फिर ४ मई को रात के बारह बजे चोरों की तरह पुलिसवाले आए, और दाँडी से तीन मील दूर गाँधी को गिरफ्तार करके ले गये।

गाँधी की दूसरी यरवडा यात्रा उनके छः साल पहले के प्रवास से कई मानों में भिन्न थी। १९२२ में जब गाँधी पर मुकदमा चला था, तब असहयोग का तूफान गुजर चुका था। उनकी गिरफ्तारी से देश में कोई अशान्ति नहीं हुई। लेकिन इस बार सारे देश में हड़तालें हुईं, जुलूस निकले, प्रदर्शन हुए, गोलियाँ चलीं। गाँधी को जेल में रखकर

सरकार चैन नहीं ले सकी। बम्बई की कपड़ा मिलें और रेलवे कारखाने ठप्प हो गए। शोलापुर के मिल मजदूरों ने बगावत करके ब्रिटिश प्रशासन को समाप्त कर दिया और राष्ट्रीय ध्वज लहरा दिया। धरसाना और वडाला में नमक के डिपो पर सत्याग्रही हमले किए गए। गिरफ्तारियों की संख्या एक लाख का अंक छूने लगी, जिसमें दस हजार से ज्यादा मुसलमान थे।

जून १९३० में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई, जिसमें १९१९ के सुधारों को तानाशाही का दूसरा नाम बताया गया, और एक संघीय भारत का सुझाव दिया गया। गोलमेज परिषद् लन्दन में होने वाली थी और रेमजे मेकडॉनल्ड की सरकार व्यग्र थी कि कांग्रेस भाग ले। लार्ड अरविन ने मजदूर दलीय डेली हैरल्ड के संवाददाता जार्ज स्लोकोम्ब को गाँधी से मिलने भेजा। गाँधी उन दिनों जेल में चरखा कातते थे और आश्रमवासियों को पत्र लिखते थे, जो यंग इण्डिया में छपते थे। (बाद में ये पत्र एक पुस्तक में संकलित हुए जिसका नाम है: 'यरवडा मन्दिर से')। जुलाई में वाइसराय की कौंसिल के सदस्य तेजबहादुर सप्रू और एम. आर. जयकर भी गाँधी से मिले। अगस्त में नेहरू-पिता पुत्र नैनी जेल से यरवडा लाए गए और कांग्रेस कार्यसमिति के अन्य सदस्यों के साथ सबकी बातचीत सप्रू और जयकर से हुई।

कोई समझौता नहीं हुआ और दमन व आन्दोलन जारी रहे। नवम्बर से जनवरी तक लन्दन में प्रथम गोलमेज परिषद् हुई, जिसमें गाँधी अपनी अनुपस्थिति के कारण महत्वपूर्ण थे। २६ जनवरी १९३१ को स्वाधीनता दिवस की पहली सालगिरह पर अरविन ने गाँधी को स्वाधीन कर दिया।

गाँधी जेल में थे, लेकिन १९३० में यरवडा विद्रोही भारत का नाभिस्थल बन गया था। लेकिन गाँधीजी निश्चिन्त थे। जब वे जेल में होते, तो भजन, प्रार्थना, कताई और अध्ययन का उनका आश्रम

कार्यक्रम शुरू हो जाता, और आन्दोलन की चिन्ता वे एक तरह से छोड़ देते।

गाँधी-अरविन समझौते और (द्वितीय) गोलमेज परिषद् के बाद गाँधी ४ जनवरी १९३२ को फिर गिरफ्तार कर लिए गए। गोलमेज सम्मेलन में वे कह आए थे कि यदि ब्रिटिश सरकार ने दलित जातियों को हिन्दुओं से अलग करने की कोशिश की, तो मैं जान की बाजी लगाकर इसका विरोध करूँगा। लेकिन अंग्रेजों ने इस चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया। उन्होंने समझा यह महज धमकी है, जैसी कि नेता अक्सर देते हैं। ११ मार्च को गाँधीजी ने सर सेमुअल होर को एक चिट्ठी लिखी, जिसमें उन्होंने फिर स्पष्ट कर दिया कि अगर हिन्दुस्तान पर साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र थोपे गए, तो मुझे आमरण अनशन करना होगा। लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। १७ अगस्त को लन्दन की हुकूमत ने अपना कम्यूनल अवार्ड, साम्प्रदायिक तोहफा, भारत को भेंट कर दिया।

और गाँधीजी ने तुरन्त घोषणा कर दी कि मैं तोहफे के खिलाफ २० सितम्बर से आमरण अनशन करूँगा, जिसमें पानी के साथ नमक और सोडा के सिवाय कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगा।

यरवडा मन्दिर पुनः भारत का नाभि स्थल बन गया। जेल के दरवाजे नेताओं और मुलाकातियों के लिए खुल गए और सलाह-मशविरों का दौर-दौरा शुरू हो गया। जेल के ही नहीं, भारत के अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के दरवाजे अछूतों के लिए खुलने लगे और देखते-देखते वातावरण बदलने लगा। अन्ततः सवर्णों और दलित नेताओं के बीच एक समझौता हुआ, जिसे यरवडा पैक्ट के नाम से पुकारा जाता है। दलित नेताओं ने पृथक निर्वाचन क्षेत्र की योजना रद्द करना मंजूर किया और उसके स्थान पर दूसरी स्कीम मान ली।

अस्पृश्यता के खिलाफ जेल से ही एक आन्दोलन चलाने की इजाज़त गाँधीजी ने माँग ली, और यरवडा की कोठरी से एक सामाजिक

क्रान्ति का सूत्रपात होने लगा। सवर्ण कट्टरपंथियों ने गाँधी पर हमले भी बहुत किए। सत्याग्रह के साथ अब अछूतोद्धार जुड़ गया। ११ फरवरी १९३३ को गाँधीजी के तत्वावधान में हरिजन का पहला अंक प्रकाशित हुआ, और जेल में ही छुआछूत के विरुद्ध इक्कीस दिन का उपवास उन्होंने शुरू किया। उसी दिन, ८ मई को, सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया।

कुछ और गिरफ्तारियों और रिहाइयों के बाद अगस्त में गाँधीजी अन्ततः मुक्त हो गए। इस प्रकार यरवडा का दूसरा दौर समाप्त हुआ। १९३० से ३३ तक की इन जेल-यात्राओं में देश की राजनीतिक व सामाजिक बागडोर पर गाँधी का हाथ प्रायः बना रहा।

उनके सचिव महादेव देसाई ने गाँधीजी की इस जेल यात्रा का रोचक वर्णन अपनी डायरियों में किया है। इस बार वल्लभभाई पटेल भी गाँधीजी के साथ थे, और उनका स्वभाव काफी चुहलप्रिय था। गाँधी जेल में व्यस्त रहते। प्रार्थना और कताई की तो उन्हें शपथ सी थी। कपड़े वे अपने हाथ से धोते थे और सारी चिट्ठियों का जवाब या तो स्वयं देते या लिखवाते। अधिकांश पत्र व्यक्तिगत होते और आश्रमवासियों को लिखे जाते। एक दिन तो उन्होंने उनचास पत्र लिखे थे। इस बार खगोलशास्त्र में उनकी दिलचस्पी हो गई और रात में प्रायः वे तारों और नक्षत्रों को देखा करते।

गाँधीजी की जेल यात्रा का तीसरा और अन्तिम दौर अगस्त १९४२ से मई १९४४ तक चला। यह पहला मौका था जबकि आन्दोलन के सूत्रपात के पहले ही सरकार ने सूत्रधार को और सभी प्रमुख पात्रों को जेल में ठूँस दिया। वर्ना १९२२ में जब गाँधी बन्दी बने थे, तब सत्याग्रह समाप्त हो चुका था और १९३० और ३२ में जब वे कारावास ले जाए गए, तब वे आन्दोलन को रूप और शैली दे चुके थे। कारावास के अन्दर से भी देश की पतवार घुमाने के अवसर उन्हें प्रायः मिले। लेकिन १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन

तो शुरू भी नहीं हो पाया था कि सारी कांग्रेस कार्यकारिणी यरवडा या अहमदनगर या आगा खाँ महल भेज दी गई।

शायद सरकार इस बार बहुत डरी हुई थी। बर्मा, मलाया और सिंगापुर में जापान के हाथों पराजय झेलने के बाद वह आतंकित हो चुकी थी, और उसका खयाल था कि संकट की घड़ी में "भारत छोड़ो" आन्दोलन शुरू करके कांग्रेसी नेता चाहते हैं कि अंग्रेजों को भगाकर जापान से समझौता कर लिया जाए। जुलू विद्रोह, बोअर युद्ध और प्रथम महायुद्ध में हुकूमत का साथ देने वाले गाँधी कीं वफादारी के बारे में अंग्रेज शायद शंकित हो चुके थे। इसलिए शेष विश्व के साथ गाँधीजी का सम्पर्क पूरी तरह काट दिया गया। जीवन में पहली बार उन्हें एक महल में बन्दी बनाया गया। सरकार यह भी मालूम नहीं होने देना चाहती थी कि गाँधीजी हैं कहाँ? लेकिन अफवाहों के जरिये सारे देश ने जान लिया कि गाँधीजी आगा खाँ महल में हैं।

गाँधीजी की कोई जेलयात्रा इतनी दुःखद और त्रासभरी नहीं हुई, जितनी कि यह अन्तिम यात्रा हुई। गिरफ्तारी को एक सप्ताह भी नहीं हुआ था कि महादेव देसाई को अचानक दिल का दौरा पड़ा और वे चल बसे। पैंतीस साल पुराने अपने सहायक को उन्होंने क्षण भर में खो दिया। आगा खाँ महल के अहाते में ही महादेव देसाई की दाहक्रिया हुई। सरकार की इजाजत नहीं थी कि उनका शव रिश्तेदारों और मित्रों को सौंपा जाए और सार्वजनिक अन्त्येष्टि हो। मौत के बाद भी महादेव देसाई का शव बन्दी था। गाँधी चाहते तो इस प्रश्न पर अड़ सकते थे। लेकिन अन्ततः उन्होंने आगा खां महल का उपयोग श्मशान के रूप में करना पसन्द कर लिया।

महल अब मरघट और बन्दीगृह दोनों बन गया। मौत का साया कैदियों पर मँडराने लगा और समय कटना मुश्किल हो गया। महादेव देसाई की समाधि पर फूल चढ़ाना बन्दियों की दिनचर्या बन गई। महल मनहूस हो गया। कस्तूरबा इस गिरफ्तारी के दौरान प्रायः

बीमार रहीं और जेलयात्रा के अन्तिम दिनों में वे भी चल बसीं। पत्नी और सहायक को खोकर गाँधीजी जब जेल से निकले, तब वे निपट अधूरे थे। १९४२ का आन्दोलन पटरी से उतर गया था और उनकी मुट्ठी खाली थी। देश में हो रही हिंसा का दोष जब वाइसराय ने गाँधी के सिर मढ़ा, तो गाँधी इस झूठ से तिलमिला उठे। उन्होंने कहा कि जिस आन्दोलन का संचालन करने की इजाजत ही आप लोगों ने नहीं दी, उस आन्दोलन की विकृतियों का दोष हम पर कैसे? दरअसल कांग्रेस के चोटी के नेताओं को गिरफ्तार करके सरकार ने शेर जैसी हिंसा का परिचय दिया। इन कदमों से जनता इतनी भड़क उठी कि वह भी हिंसा पर आमादा हो गई। वाइसराय इस तर्क से सहमत नहीं हुए, और तब फरवरी १९४३ में गाँधी को इक्कीस दिन का अनशन करना पड़ा। यह पहला मौका था जब गाँधीजी ने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ अनशन किया। इससे पहले गाँधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के खातिर अनशन किया, हरिजनों के लिए किया, सत्याग्रह में हुई जन हिंसा का प्रायश्चित करने के लिए किया, आश्रम में होने वाली यौन अनैतिकता के लिए किया, लेकिन अंग्रेजों की झूठ के खिलाफ पहला अनशन उन्होंने आगा खाँ महल में ही किया।

लेकिन वाइसराय लॉर्ड लिनलिथगो टस से मस नहीं हुए। वे १९४२-४३ की गड़बड़ों के लिए कांग्रेस और गाँधी को ही जिम्मेदार मानते रहे। अंग्रेज चाहते थे कि जैसे चौरी चौरा की हिंसा के बाद गाँधीजी ने अनशन किया था, वैसे ही १९४२ के आन्दोलन की उग्रतम हिंसा के खिलाफ वे अनशन करें, और भारत छोड़ो आन्दोलन वापस ले लें। लेकिन उन्हें बड़ी निराशा हुई कि अनशन तो दूर, जनता की भारतव्यापी हिंसा के खिलाफ गाँधीजी ने निन्दा का एक शब्द भी नहीं कहा। गाँधीजी को यह बड़ा अजीब लगा कि नेताओं को खतरनाक और खुराफाती समझकर पहले तो सरकार ने गिरफ्तार कर लिया;

जो लोग संघर्ष को अहिंसक रख सकते थे, वे सब जेल में ठूँस दिए गए। फिर सरकार के अन्याय से जब जनता पागल हो गई और वह अराजक व नेतृत्वहीन विद्रोह करने लगी, तो अंग्रेजों ने इन्हीं गिरफ्तार नेताओं से उम्मीद की कि वे जनता को कोसें और आन्दोलन वापस ले लें।

अत: गाँधी ने अपना अनशन इस बार जनता नहीं, सरकार के खिलाफ किया। उन्होंने सरकार को याद दिलाई कि जन हिंसा के खिलाफ सारे अनशन मैंने तब किए हैं, जब मैं जेल के बाहर था और अपने सत्याग्रह के नतीजों की खुद ही जिम्मेदारी ले सकता था। निन्दा वही कर सकता है, जो मुक्त होकर नेतृत्व कर सके और रास्ता बता सके। लेकिन जिस आदमी को आपने आगा खाँ महल में कैद कर रखा है, उससे आप सिर्फ निन्दा का बयान चाहते हैं और कोई आजादी उसे नहीं देना चाहते। पहले आपने इंजिन में से ड्राइवर को बाहर निकाल दिया। जब इंजिन पटरी से उतर गया तो आप कहते हैं कि इस इंजिन की निन्दा कीजिए और इसे चलाने का सारा कार्यक्रम वापस लीजिए। इसमें क्या तुक है?

गाँधीजी को महल में काफी झुँझलाहट और वेदना इस बात से भी हुई कि कस्तूरबा की बीमारी के दिनों में सरकार ने नौकरशाही जड़ता का परिचय दिया। दिसम्बर १९४३ से कस्तूरबा की हालत बिगड़ती चली गई, और उन्होंने चाहा कि डॉ. दिनशा मेहता और किसी आयुर्वेदिक वैद्य को इलाज के लिए बुलाया जाए। हफ्तों तक उनकी बात नहीं सुनी गई। फरवरी में डॉ. मेहता और वैद्यराज शिव शर्मा आ पाए। तब तक कस्तूरबा की दशा और गिर चुकी थी। पंडित शिव शर्मा को महल में रात ठहरने की इजाजत नहीं थी और इलाज रात को भी चलता था। इसलिए कुछ दिन वे बेचारे महल के अहाते के बाहर अपनी कार में ही रात भर सोये। शुश्रूषा के लिए ज्यादा लोगों की जरूरत पड़ रही थी, और गाँधीजी ने चाहा कि कनु

गाँधी को बन्दीगृह भेज दिया जाए । डॉ. जीवराज मेहता और डॉ बी.सी. राय को बुलाने की प्रार्थना भी की गई; वे अन्त तक नहीं आ सके । वा की चिकित्सा की डॉ.एम.एम.डी.गिल्डर ने, (जो स्वयं वन्दी थे), प्राकृतिक चिकित्सक डॉ.दिनशा मेहता ने और वैद्यराज पंडित शिव शर्मा ने ।

कस्तूरवा के अन्त के वाद वापू को भी मलेरिया और दस्त की शिकायत हो गई । अंग्रेजों को लगा कि एक जेल में तीन मौतें जरूरत से ज्यादा हो जाएँगी । फिर जापान युद्ध में पीछे हटने लगा था और १९४२ का ज्वार समाप्त प्राय: था । ६ मई १९४४ को शासन ने गाँधीजी को रिहा कर दिया ।

अगर १९३२ की जेल यात्रा का वृत्तान्त महादेव देसाई की डायरियों में मिलता है, तो आगा खाँ महल के दिनों की कहानी डॉक्टर सुशीला नैयर ने लिखी है, जो १९३९ के राजकोट सत्याग्रह के दिनों में गाँवीजी की निजी डॉक्टर वन गई थीं । यह डायरी बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई, और उसका नाम है–'वापू की कारावास कहानी ।'

१९४२-४४ के वर्षों में गाँधी को न पत्र लिखने की इजाजत थी, न हरिजन का सम्पादन करने की । अत: इस दौरान उनके अधिकांश पत्र या तो वाइसराय के नाम हैं, या बम्बई और दिल्ली के अंग्रेज अफसरों के नाम । भारत सरकार के अतिरिक्त सचिव को लिखा गया उनका पत्र तो पूरी की पूरी एक किताव है । अनशन के ऐन मौके पर गाँधीजी को वदनाम करने के लिए सरकार ने एक पुस्तिका छापी थी, जिसका शीर्षक था–'काँग्रेस रिसपाँसिविलिटी फॉर द डिस्टर्बंसेस १९४२-४३ ।' इस पुस्तिका का ब्यौरेवार जवाब गाँधीजी ने अपने पत्र में दिया है । पत्र इतना लम्बा है कि उसे लिखने में गाँधीजी को तीन महीने लगे ।

शासन के साथ गाँधी का यह सारा पत्र-व्यवहार नवजीवन ने पुस्तकाकार छापा है। पुस्तक का नाम है–'गाँधीज़ करसपोंडेंस विथ द गवर्नमेंट १९४२-४४।'

आगा खां जेल में गाँधीजी ने गुजराती में एक किताब भी लिखी: 'आरोग्य की कुंजी'। अपनी गिरफ्तारी के अठारह दिन बाद और महादेव देसाई की मृत्यु के बावजूद, गाँधीजी २७ अगस्त १९४२ को यह किताब लिखने जुट गए। भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रधान सेनापति को युद्ध का शंखनाद करते समय अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया, तो वह युद्ध का खयाल छोड़कर आरोग्य और प्राकृतिक चिकित्सा की ओर मुड़ गया। चार महीने में उनकी लघु पुस्तक समाप्त हो गई।

कुल मिलाकर गाँधीजी के आगा खाँ वर्ष घुटन और एकाकीपन और व्यक्तिगत दुर्घटनाओं के वर्ष थे। जब वे जेल से छूटे, तब ७५ साल के थे और भारत की आजादी कोसों दूर प्रतीत होती थी। मंजिल पर पहुँचने के बजाय वे सही रास्ते चलना ज्यादा सार्थक मानते थे, इसलिए उनमें ऐसी निराशा कभी नहीं पनपी कि मैं बूढ़ा हो चला और भारत अब तक आजाद नहीं हुआ। लेकिन जब उन्हें सही रास्ते भी नहीं चलने दिया गया, और महायुद्ध तथा बंगाल के अकाल के दिनों में उन्हें कैद रखा गया, तो लम्बे समय तक पिंजड़े में रहने की ऊब से वे छटपटाने लगे और हताश होने लगे।

९ अगस्त १९४२ को जब संघर्ष का क्षण था, तब गाँधी भारत के प्रधान सेनापति थे। लेकिन आगा खाँ जेल से निकलने के बाद जब सत्ता हस्तान्तरण की बातें शुरू हुईं, तब कर्कश आवाजों से आकाश भर गया और गाँधी प्रधान सेनापति नहीं रहे। उनके सपनों का भारत उनकी आँखों के सामने टूटने लगा। गाँधी वही थे, लेकिन उनके देखते-देखते हिन्दुस्तान बदल रहा था।

गाँधीजी के आगा खाँ वर्षों की कथा एक पिंजड़े में बन्द कर्मयोगी की कथा है। अकर्म की मनोबल तोड़ने वाली मजबूरियों के बीच

वह एक ऐसे कर्मठ आदमी की कथा है, जो भुतहे मकान में मँडराती मृत्यु के बीच भी अपनी हस्ती और अपना आत्म विश्वास बनाए है। कर्म के सब रास्ते जब बन्द हों, तब वह आदमी प्रार्थना को ही कर्म का दर्जा दे देता है और ऐसे जीता है, जैसे बहुत सरगमों से जी रहा हो। भारत जब विदेशियों का गुलाम बना, तब वह भी रामनाम की ओर मुड़ा और भक्ति को उसने कर्म का दर्जा दिया।

आगा खाँ वर्षों की कथा, एक ऐसे भवन की कथा है, जो महल, मरघट और बन्दीगृह तीनों एक साथ था।

आगा खाँ और उनका महल

२२ फरवरी १९६९ को चौथे आगा खाँ हज़र इमाम शाह करीम अल हुसैनी (संक्षेप में प्रिंस करीम) ने अपना पूना का महल राष्ट्र के नाम अर्पित किया। उस दिन गाँधीजी की एक पुरानी व्यक्तिगत साध पूरी हुई। कस्तूरबा की मृत्यु की पच्चीसवीं सालगिरह के दिन आगा खाँ महल गाँधी स्मारक निधि की सम्पत्ति बन गया।

वह दिन इस महल के लिए रौनक का दिन था। भारत सरकार के मेहमान बनकर प्रिंस करीम भारत आए। आगा खाँ महल के लॉन में एक पण्डाल बना। समारोह की अध्यक्षता करने आए तत्कालीन उपप्रधान मंत्री मोरारजी देसाई। उन्होंने कहा कि गाँधीजी ने पच्चीस साल पहले जो भविष्यवाणी की थी, वह आज पूरी हो रही है।

बापू ने सचमुच भविष्यवाणी की थी। अपनी कारावास की डायरी में डॉ सुशीला नैयर १० नवम्बर १९४२ की तारीख के नीचे लिखती हैं:

सुबह घूमते समय बापू कहने लगे,—"महादेव को मेरा वारिस होना था; पर मुझे उसका वारिस होना पड़ा है। इसकी समाधि पर मेरा जाना बिलकुल सहज बन गया है। मैं न जाऊँ तो बेचैन हो जाऊँ। वहाँ जाकर मैं कुछ करना नहीं चाहता, समय भी नहीं देना चाहता,

मगर हो आता हूँ इतना ही मेरे लिए बस है। अगर मैं जिन्दा रहा तो यह जमीन आगा खाँ से माँग लूँगा। वह न दे, यह संभव हो सकता है। मगर किसी रोज तो हिन्दुस्तान आजाद होगा। तब यह यात्रा का स्थान बनेगा।...हो सकता है कि मेरी जिन्दगी में यह जगह मुझे न मिल सके और इस जगह को यात्रा स्थल बनते में देख न सकूँ, मगर किसी न किसी दिन वह जरूर बनेगा, इतना मैं जानता हूँ।"

२२ फरवरी १९६९ को एक स्मारक बनाने के इरादे से गाँधी-स्मारक निधि ने आगा खाँ पैलेस ले लिया। उस दिन महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसन्तराव नाइक ने कहा कि गाँधीजी की गरिमा के अनुरूप उचित स्मारक बनाने में जो खर्च आएगा, उसे महाराष्ट्र वहन करेगा। कस्तूरवा ट्रस्ट की अध्यक्षा श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी ने समारोह में आए अतिथियों का स्वागत किया। गाँधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर उस दिन दिल्ली में बीमार थे, इसलिए उपाध्यक्षा श्रीमती सुचेता कृपलानी ने निधि का प्रतिनिधित्व किया।

शिया इमामी इस्माइली समाज के ४९ वें इमाम प्रिंस करीम ने इस अवसर पर कहा कि मैं, और मेरे भाई प्रिंस अमीन मोहम्मद और इस्माइली जमात के सदस्य वहुत खुश हैं कि राष्ट्रपिता की स्मृति में बनने वाला यह भावी राष्ट्रीय स्मारक हम शासन को सौंप रहे हैं। गाँधी शताब्दी से अच्छा कोई अवसर इस काम के लिए हो नहीं सकता था।

गाँधीजी ६ मई १९४४ को सुबह ८ बजे आगा खाँ बन्दीगृह से रिहा हुए। रिहाई के पन्द्रह मिनिट पहले उन्होंने एक पत्र पूरा किया, जो वम्बई सरकार के गृह सचिव को सम्बोधित है। पत्र में लिखा है।

नजरबन्दी कैम्प

६ मई १९४४, ७-४५ प्रातः

महोदय,

जेलों के इन्स्पेक्टर जनरल ने मुझे वताया है कि इस कैम्प के बन्दियों का दल आज सुबह ८ बजे रिहा होने वाला है। मैं इस तथ्य

को लिपिवद्ध करना चाहता हूँ कि श्री महादेव देसाई के शव की तथा वाद में मेरी पत्नी के शव की अन्त्येष्टि के कारण दाह संस्कार का स्थल, जिसे फेंसिग द्वारा अलग कर दिया गया है, अब एक पवित्र स्थल वन गया है। दल ने दिन में दो वार इस स्थल की यात्रा की है, दिवंगत आत्माओं को पुष्प-श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं, और प्रार्थनाएँ कही हैं। मेरा विश्वास है कि शासन भूमि के इस टुकड़े को हस्तगत करेगा, और हिज हाइनेस आगा खाँ की जमीन से गुजर कर वहाँ तक पहुँचने का अधिकार सवको होगा, ताकि जो रिश्तेदार और मित्र चाहें वे इच्छानुसार दाह स्थल को देख सकें। शासन यदि इन वातों की इजाजत दे दे तो मैं चाहूँगा कि इस पवित्र स्थल के खर्च आदि का और दैनिक प्रार्थनाओं का प्रवंध मैं स्वयं करूँ। मेरी आशा है कि मेरी प्रार्थना के अनुकूल आवश्यक कदम शासन द्वारा उठाए जाएँगे। मेरा पता होगा सेवाग्राम वाया वर्धा (सी.पी.)।

आपका,
मो.क.गाँधी

लेकिन ब्रिटिश सरकार को इस बात में क्यों रुचि होने लगी कि पूना में महादेव देसाई और कस्तूरवा की समाधियाँ बनें? वे शायद इन दोनों मृत्युओं को अपने राज के लिए एक लांछन मानते थे। अतः तीन महीने बाद बम्बई के गृह सचिव महोदय ने जवाब दिया कि भूमि अधिग्रहण कानून के अन्तर्गत अनिवार्यतः भूमि प्राप्त करना शासन के लिए संभव नहीं है। यह आपके और आगा खाँ के बीच निजी वार्तालाप का मामला है। फिर भी हमने आपकी प्रार्थना आगा खाँ तक पहुँचा दी है और वह उस पर विचार कर रहे हैं। सरकार का ख्याल है कि इस दर्मियान यदि 'महादेव देसाई' और 'श्रीमती गाँधी' के रिश्तेदार और आपके द्वारा प्रस्तावित अन्य लोग महल की जमीन से गुजर कर समाधि स्थल तक जाना चाहें, तो आगा खाँ को इसमें कोई एतराज

नहीं होगा, बशर्ते यह अच्छी तरह जान लिया जाए कि यह सब उनकी इजाजत और छूट से हो रहा है।

गाँधीजी को तब इस व्यवस्था से सन्तोष हो गया, और उन्होंने शासन को एतदर्थ धन्यवाद दे दिया।

साल भर तक कस्तूरबा और महादेवभाई की समाधि पर मित्र व रिश्तेदार जाते रहे। लेकिन १९४५ की गर्मियों में अफवाह उड़ी कि आगा खाँ का महल फौज के हवाले कर दिया जाएगा। २७ मई १९४५ को गाँधीजी ने महाबलेश्वर के मोरारजी कासल से एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने बम्बई सरकार को याद दिलाई कि उसने साल भर पहले क्या कहा था। उन्होंने भय व्यक्त किया कि यदि फौज आ गई, तो समाधि पर प्रार्थना आदि न हो सकेगी। अन्त में उन्होंने लिखा:

'मुझे आशा है कि महल का मालिक कोई भी हो, उसमें रहे कोई भी, लेकिन दोनों समाधियाँ जिस पवित्र स्थल पर खड़ी हैं, उसकी रक्षा की जाएगी और वह स्थल परिवार के रिश्तेदारों और मित्रों की पूजा-प्रार्थना के लिए सुरक्षित रहेगा।'

जब तक जवाब आया तब तक महल में फौज आ गई थी। बम्बई सरकार ने जवाब में कहा कि हर रविवार को समाधि स्थल पर जाने की जो व्यवस्था पहले से थी, उसे फौजी अफसरों ने स्वीकार कर लिया है। लेकिन रविवार के अलावा किसी दिन कोई जाना चाहे, तो वह जनरल फेस्टिंग, कमाण्डर ३६ डिविजन को, जो आगा खाँ महल में ही रहते थे, अपनी अर्जी भेजे।

इसके बाद गाँधीजी को संभवतः इतनी फुर्सत ही नहीं मिली कि वे आगा खाँ महल की दो समाधियों के बारे में और सोचते। कस्तूरबा की मृत्यु के आठ महीने बाद देश ने अस्सी लाख रुपयों की एक थैली गाँधीजी को स्मारक हेतु भेंट की। अप्रैल १९४५ में

कस्तूरबा गाँधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट स्थापित हुआ। ट्रस्ट का उद्देश्य था–भारत की महिलाओं द्वारा देहातों में जाकर स्त्रियों तथा बच्चों की सेवा !

आजादी के बाद कस्तूरबा और महादेव देसाई की मिट्टी की समाधियों को आगा ख़ाँ ने संगमर्मर से बनवा दिया। गाँधी मेमोरियल सोसायटी ने समाधि के सामने सात एकड़ जमीन प्राप्त कर ली। लेकिन आगा ख़ाँ महल का एक और रूपान्तर हो गया। १९५५ में नेशनल एजूकेशन सोसायटी नामक एक संस्था ने महल को किराये पर ले लिया, और वहाँ एक पब्लिक स्कूल बन गया जिसका नाम नेशनल मॉडेल स्कूल है।

आगा ख़ाँ महल का नाम आते ही एक ऐसे भवन का खयाल आता है, जो वर्षों से परित्यक्त है और खाली पड़ा है, और जिसमें बस गाँधीजी का स्मारक बनने भर की देर है। लेकिन ऐसा नहीं है। उसके अहाते में इस समय ४०० लड़के रहते हैं। मुख्य द्वार और पोर्च और सीढ़ियों से गुजर कर आप पहले कमरे में प्रवेश करिये, तो आपको दुमंजिले पलंगों की कतारें और दर्जनों बिस्तर और सन्दूकें और जूते नज़र आएँगे। यह छात्रों की डारमिटरी है; यहाँ दिन भर की पढ़ाई और परेड के बाद वे सोते हैं।

फिर आप उन कमरों की ओर बढ़िए जहाँ गाँधीजी और उनके साथी नज़रबन्द थे। पहली ही मंजिल पर कोई छः फुट चौड़ा एक भव्य गलियारा, जिसके एक ओर मेहराबदार खम्भे और दूसरी ओर रहने के कमरे। एक के बाद एक, पंक्ति में। उन पर अब तख्तियाँ लगी हैं; यहाँ महादेवभाई का देहान्त हुआ; यहाँ बापू रहते थे, यहाँ सरोजिनी नायडू रहती थीं। लेकिन कमरे भरे हैं। उनमें नेशनल मॉडेल स्कूल के दफ्तर हैं; अलमारियाँ हैं, कक्षाएँ हैं, हाउसमास्टर हैं, प्राचार्य हैं। गलियारे का आखिरी कमरा भोजनालय है, जहाँ स्टेनलेस स्टील की थालियों और बेंच टेबलों के बीच यह कल्पना करना कठिन हो

जाता है कि बापू की टोली यहाँ कैसा जीवन बिताती होगी। प्रखर वर्तमान की रूपरेखाएँ धुँधले अतीत को और भी पृष्ठभूमि में धकेल देती हैं।

पूना का यह पब्लिक स्कूल काफी प्रसिद्ध है। वहाँ पूर्व प्राथमिक से लेकर हायर सेकण्डरी तक की पढ़ाई अंग्रेजी माध्यम से होती है। स्कूल के पीछे श्री एवं श्रीमती एन. डी. नगरवाला का अनथक परिश्रम है। भारत सरकार की मेरिट छात्रवृत्ति पाने वाले लड़के इस स्कूल में भेजे जाते हैं। बड़े लड़के प्रिंसिपल और हाउस मास्टरों की देखरेख में महल में रहते हैं। छोटे लड़के महल के मेहमानखाने में रहते हैं, जहाँ उन्हें मेट्रनें नहलाती धुलाती और कपड़े पहनाती हैं। लड़कियाँ महल के पास के बंगले में रहती हैं, जो प्रिंसिपल का भी बंगला है।

जब श्री नगरवाला ने आगा खाँ महल को अपने मॉडेल स्कूल के रूप में चुना, तब उन्होंने एक वीरान भवन का सदुपयोग किया। तब तक आगा खाँ को भी नहीं सुझा कि उनका महल इतना ऐतिहासिक बन गया है कि उसमें किराये का स्कूल चलाने से बहुत ज्यादा बेहतर यह होगा कि महल सीधे राष्ट्र को अर्पित कर दिया जाए। हर विचार को पकने में कुछ समय लगता है। जब तक गाँधी शताब्दी का वर्ष नहीं आया, तब तक यह संयोग ही नहीं हुआ कि महात्मा गाँधी पच्चीस वर्ष पुरानी साध पूरी हो। यह संभव है कि तीसरे आगा खाँ सर सुलतान मोहम्मद शाह के रिश्ते भारत के साथ, गाँधीजी के साथ, और इस महल के साथ ज्यादा गहरे थे, और इस भावुक ग्रंथि के कारण महल को त्यागने का विचार उन्होंने नहीं किया। मोहम्द शाह के जमाने में ही यह महल बन कर पूरा हुआ। अनेकों बार वे यहाँ पूना की घुड़दौड़ों के लिए आए, और अनेकों बार यहाँ उन्होंने दावतें दीं। अंग्रेज सरकार से उनके घनिष्ठतम संबंध रहे। लेकिन चौथे आगा खाँ प्रिंस करीम की जड़ें, उनके सूत्र संबंध, जितने योरप में हैं, उतने भारत में नहीं। इसलिए भारत के एक कोने में

पड़े हुए अपने उपयोगहीन महल का दान करने में उन्हें कोई भावुक बाधा नहीं आई। संयोग कहिए कि जब उन्होंने दान घोषित किया, तव महल खाली नहीं था, उसमें एक संस्था चल रही थी। आगा खाँ महल एक स्मारक बने उसके पहले यह जरूरी है कि नेशनल मॉडेल स्कूल अन्यत्र स्थानान्तरित हो।

आगा खाँ महल में रहना गाँधीजी को सुहाया नहीं। सारे कैदी मामूली जेल में हों, और अकेले गाँधी के लिए महल हो, इसे वे कैसे पसन्द कर सकते थे। २६ अक्टूबर १९४३ को भारत सरकार के गृह विभाग के अतिरिक्त सचिव को पत्र लिखते हुए गाँधीजी ने कहा कि इस बड़ी भारी जगह गिरफ्तार करके मेरे लिए जो लम्वा चौड़ा पुलिस गार्ड लगाया है, उसे मैं सार्वजनिक पैसे का दुरुपयोग मानता हूँ। मैं अपने दिन किसी भी जेल में काट लेना पसन्द करूँगा।

उन दिनों बंगाल में अकाल पड़ रहा था, और गाँधीजी छटपटा रहे थे कि भारत के सारे नेता जेल में असहाय हैं।

४ मार्च १९४४ को गाँधीजी ने फिर यह सवाल उठाया। उपर्युक्त अधिकारी को पुनः एक पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा;

महोदय,

असेम्वली में एक सवाल के जवाव में माननीय होम मेम्वर ने यह कहा बताया जाता है कि "आगा खाँ महल में मिस्टर गाँधी और उनके साथ के गिरफ्तार लोगों के खर्च के हेतु लगभग ५५० रुपये प्रति माह का प्रावधान किया गया।"

गत २६ अक्टूबर के अपने पत्र में मैंने निम्न वात लिखी थी : "जिस बड़ी भारी जगह मुझे लम्बे चौड़े पुलिस गार्ड के साथ गिरफ्तार किया गया है, उसे मैं सार्वजनिक पैसे का दुरुपयोग मानता हूँ। मैं अपने दिन किसी भी जेल में काट लेना पसन्द करूँगा।" माननीय होम मेम्बर का ऊपर निर्दिष्ट जवाब मुझे याद दिलाता है कि मैंने

जो बात लिखी थी, उस पर मुझे लगातार जोर देना चाहिए था। लेकिन दुरुस्ती देर से भी हो, तो कोई बात नहीं। इसलिए अब मैं इस सवाल को फिर उठा रहा हूँ।

मेरा, और मेरे साथियों की ओर से होने वाला खर्च सिर्फ ५५० रु. प्रतिमाह नहीं है। इस वड़ी भारी जगह के किराये के रूप में जो रकम दी जाती है (जिसका सिर्फ एक हिस्सा हमारे लिए खुला है), और साथ ही वाहर तैनात गार्ड पर, और अन्दर रखे गए स्टाफ पर जो खर्च होता है–जिसमें सुपरिण्टेण्डेंट, जमादार और सिपाही शामिल हैं, वह भी इसमें जोड़ना होगा। फिर बगीचे की देखभाल के लिए और महल के वन्दियों की सेवा के लिए यरवडा से कैदियों का जो जत्था यहाँ आया है, उसका खर्च भी जोड़िये। मेरे दृष्टिकोण से तो लगभग यह सारा ही खर्च अनावश्यक है, और जव लोग भूख से मर रहे हों, तव यह भारतीय मानवता के खिलाफ जुर्म सा है। मेरा आग्रह है कि मुझे और मेरे साथियों को सरकार की पसन्द के किसी भी नियमित जेल में रख दिया जाए। अन्त में मैं इस दुखद विचार को अपने आप से छिपा नहीं सकता कि यह सारा खर्च उस टैक्स से हो रहा है जो भारत के करोड़ों गूंगे लोगों से वसूला जाता है।

आपका,
एम. के. गाँधी

२१ अप्रेल को गाँधीजी ने तीसरा पत्र लिख कर सरकार से फिर प्रार्थना की उन्हें किसी सस्ते जेल में रखा जाए। लेकिन तव तक तो सरकार उन्हें रिहा करने का इरादा कर चुकी थी।

आगा खाँ महल पूना से पाँच मील दक्षिण में अहमदनगर रोड पर स्थित है। उसके निर्माण का फैसला १८९७ में हुआ, जवकि वम्बई प्रेसिडेंसी पर अकाल आया हुआ था। पूना के गरीब लोगों को राहत और नौकरी देने के इरादे से महल का काम शुरू हुआ। आगा खाँ तृतीय की माँ लेडी अली शाह ने महल निर्माण की देख रेख की। कहा

जाता है कि मजदूरों को दिल खोल कर वेतन दिया गया। १२ लाख की लागत से आखिर महल बन कर पूरा हुआ।

महल जब बन रहा था, तब लोग सुलतान मोहम्मद शाह से पूछते थे कि इस जगह बन रहे महल का क्या होगा। आगा खाँ जवाब देते कि एक दिन यह भवन बहुत बड़ा केंद्र बनेगा। पता नहीं उनके दिमाग में कैसा केन्द्र बनाने की कल्पना थी। लेकिन महल से आगा खाँ को लगाव था, और कई महाराजाओं और प्रसिद्ध हस्तियों का आगा खाँ ने इस महल में स्वागत किया।

महल के सामने जो बगीचा है, वह भारत के सर्वश्रेष्ठ बगीचों में से एक माना जाता था। वहाँ जो दुर्लभ पेड़ और पौधे लगाए गए थे, उनका अध्ययन करने के लिए कृषि में शोध करने वाले छात्र अक्सर जाया करते थे।

आगा खाँ की पदवी पुरानी नहीं है, हालाँकि अपना वंश वे बेहद पुराना मानते हैं। कहा जाता है कि वे हज़रत मोहम्मद की लड़की फातिमा, और उसके पति अली के वंशज हैं। मिस्र के खलीफाओं से भी उनके रक्त संबंध बताए जाते हैं।

लेकिन पहले आगा खाँ उन्नीसवीं सदी में हुए। उनका नाम था हसन अली शाह (१८००–१८८१)। वे फारस के रहने वाले थे, और उस मुल्क के केरमान नामक सूबे के गवर्नर थे। शाहंशाह फतह अली के वे विश्वासपात्र थे, और उन्होंने हसन अली को आगा खाँ का खिताब बख्शा। (आगा तुर्की का एक शब्द है, जिसका मतलब है आला दर्जे का इज्जतदार आदमी।) हसन अली का विवाह भी फारस की राजकुमारी से हुआ। लेकिन जब तख्त पर मोहम्मद शाह बैठे, तो हसन

अली को लगा कि फारस के दरबार में वे सम्मान से नहीं रह सकते। शाह उनसे नाराज़ थे। हसन अली ने १८३८ में बगावत कर दी। लेकिन वे पराजित हुए, और भाग कर भारत आ गये।

भारत में हसन अली ने अंग्रेजों की शरण ली, और वे अंग्रेजों के महत्वपूर्ण सहायक बन गए। अफगानिस्तान और सिंध पर अंग्रेजों की हुकूमत जमाने में उन्होंने काफी योगदान दिया। प्रथम अफ़गान युद्ध (१८३९-४२) में वे थे, और सिंध की विजय (१८४२-४३) में भी। सिंध में उनका धार्मिक प्रभाव भी यथेष्ट मात्रा में स्थापित हो गया। अंग्रेजों ने उन्हें इस्लाम के इस्माइलिया सम्प्रदाय का इमाम स्वीकार किया, उन्हें हिज़ हायनेस की पदवी दी, और एक पेंशन भी।

इस प्रकार हसन अली किसी धार्मिक आन्दोलन के माध्यम से धर्मगुरु नहीं बने, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य की राजनैतिक सहायता करने के कारण वे धर्मगुरु के रूप में स्थापित हुए। यही कारण है कि प्रथम अफ़गान युद्ध से लेकर द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन (१९३२) तक आगा खाँ अंग्रेजों के वंश परम्परागत हिमायती रहे। १८५७ की क्रांति में भी उन्होंने अंग्रेजों को मदद दी।

हसन अली अन्ततः बम्बई में बस गए। यहाँ कुछ इस्माइलियों ने इमाम के रूप में उनके अधिकार को चुनौती दी, और अदालत में दावा भी किया, जिसे हसन अली ने (१८६६) जीत लिया। हसन अली घुड़दौड़ के बड़े शौकीन थे, और यह शौक बाद के इमामों को भी रहा। अपने जीवनकाल में उन्होंने भारत के बाहर भी करोड़ों इस्माइलियों का मार्गदर्शन किया।

दूसरे आगा खाँ थे अली शाह। वे थोड़े दिन ही इमाम रह पाए, क्योंकि १८८५ में पूना में उनका निधन हो गया। वे बम्बई प्रेसिडेंसी की कौंसिल के सदस्य थे।

तीसरे आगा खाँ थे सुलतान सर मोहम्मद शाह (१८७७-१९५७) भारत के स्वाधीनता संग्राम के पूरे अर्से में वे ही शिया इस्माइलियों के नेता रहे। वे अपने पिता के एकमात्र पुत्र थे, कराची में उनका जन्म हुआ और आठ साल की उम्र में वे आगा खाँ घोषित हो गए। अगले साल भारत सरकार ने उन्हें एक हजार रुपये महीने की आजीवन पेंशन प्रदान की। उनकी माँ फारस के राजवंश की थी, और उन्होंने मोहम्मद शाह को दीन के साथ दुनिया की पाश्चात्य शिक्षा भी दिलवाई। आगा खाँ जब बीस वर्ष के थे, तभी पूना का महल बनना शुरू हुआ, और उसके निर्माण की देखरेख भी उनकी माँ लेडी थेरेसा ने की।

ब्रिटिश सरकार का प्रोत्साहन पाकर आगा खाँ सिर्फ इस्माइली समाज के ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान के मुसलमानों के प्रवक्ता बन गए। लेकिन अपने संस्मरणों में वे लिखते हैं कि लॉर्ड कर्जन की फूहड़ और क्रूर नीतियों से वे नाराज़ भी थे। बम्बई के गवर्नर से और बड़े-बड़े फौजी अफसरों से दोस्ती रखने वाला आगा खाँ का परिवार भी उस आम असन्तोष से पीड़ित था, जो उस समय भारत भर में व्याप्त था।

१ अक्टूबर १९०६ को सर सुलतान मोहम्मद शाह सत्तर मुसलमानों का एक प्रतिनिधिमण्डल लेकर वाइसराय लॉर्ड मिण्टो से मिले। शिमला में उनके स्वागत में वाइसराय ने एक समारोह किया, जिसमें अनेक मेहमान और पत्रकार उपस्थित थे। प्रतिनिधिमण्डल ने वाइसराय को जो माँग एवं अभिनन्दन पत्र दिया, उसमें पहली बार यह माँग रखी गई कि भारत के मुसलमानों को धर्म के आधार पर अलग निर्वाचन क्षेत्र मिलने चाहिए। उन्हें जो सीटें विधान सभाओं में मिलें, वह आबादी के हिसाब से नहीं, बल्कि इस बात को ध्यान में रख कर मिलनी चाहिए कि मुगल काल में वे भारत के शासक थे। राजनैतिक महत्व और राजसिंहासन के प्रति वफादारी के अनुरूप उन्हें भारत के राजकार्य में हिस्सा दिया जाना चाहिए।

इतिहासकार सहमत हैं कि पाकिस्तान का विधिवत् बीजारोपण इस शिमला सम्मेलन के साथ हुआ।

लेकिन इस बारे में भीषण मतभेद है कि यह प्रतिनिधिमण्डल अंग्रेजों द्वारा प्रेरित तमाशा था, या वह कोई सच्ची चीज़ थी। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि अलीगढ़ कॉलेज के अंग्रेज प्रिंसिपल आर्चबोल्ड ने शिमला सम्मेलन आयोजित करने में वहुत दिलचस्पी ली। १६०६ की गर्मियों में जव कॉलेज में परीक्षाएँ चल रही थीं, तव वे शिमला गए, और वाइसराय के सेक्रेटरी से उन्होंने उस माँगपत्र के मुद्दों पर वहस की, जो वे मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल से दिलवाना चाहते थे।

लेकिन यह मानना शायद गलत होगा कि शिमला प्रतिनिधिमण्डल निरा अंग्रेजों का षड़यंत्र था। सर सैयद अहमद खाँ के जमाने से मुसलमानों में यह भावना थी कि भारत में हिन्दू और मुस्लिम दो अलग-अलग राष्ट्र हैं। कांग्रेस की लोकप्रियता जव वढ़ी, तव यह स्वाभाविक था कि मुसलमान अपने साम्प्रदायिक हितों की रक्षा के लिए मुस्लिम लीग वनाते। और मुस्लिमों के कुछ विशेष दावे हैं, यह कांग्रेस ने खुद स्वीकार कर लिया, जव लोकमान्य तिलक के प्रयत्नों से १९१६ में लखनऊ पैक्ट हुआ, जिसमें प्रथक निर्वाचन क्षेत्रों की वात मान ली गई।

जो भी हो, १९०९ में जो मिंटो मॉर्ले सुधार हुए उनमें पहली वार हिन्दू और मुसलमानों की अलग वोटर-सूचियों का और अलग उम्मीदवारों का इन्तजाम हुआ।

१९०७ में आगा खाँ तृतीय मुस्लिम लीग के पहले अध्यक्ष चुने गए। अपनी जीवनी में वे लिखते हैं : "मैं केवल-मात्र एक राष्ट्रवादी भारतीय हो नहीं सकता था, हालाँकि १८९२ के वाद सर फीरोज शाह मेहता, और वदरुद्दीन तैयबजी जैसे भले और वुद्धिमान लोगों के प्रभाव में उस समय के नरम राष्ट्रवादी दृष्टिकोण को मैंने अपना लिया था।" लेकिन कांग्रेस के नेताओं से ज्यादा प्रभाव उन पर अलीगढ़

का रहा । "१९०६ तक मोहसिन-उल-मुल्क और मैं, और बहुत से दूसरे मुस्लिम नेता इस नतीजे पर आ गए थे कि एक अलग संस्था और कार्यक्रम पर ही हम अपनी उम्मीद टिका सकते हैं । मुल्क के अन्दर बसे एक मुल्क के नाते हमें ब्रिटिश सरकार से राजनैतिक मान्यता प्राप्त करनी होगी ।" मुस्लिम लीग की ढाका शाखा को पत्र लिखते हुए आगा खाँ ने कहा कि लीग की राय में ब्रिटिश हुकूमत भारत के लिए जरूरी है ताकि भारत के मुसलमान हिन्दुओं की हुकूमत से और अराजकता से बच सकें । लीग बंगाल के बँटवारे का समर्थन करती थी, और वह स्वराज तथा स्वदेशी के खिलाफ थी ।

मुसलमानों के सहयोग से ब्रिटिश हुकूमत इतनी प्रसन्न थी कि १९१० में सर वेलेंटाइन शिरोल ने अपनी किताब "इंडियनअनरेस्ट" में लिखा : "यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि भारत के मुसलमानों के हित स्वार्थ और अरमान अंग्रेजी हुकूमत को ताकतवर और मुकम्मिल बनाने के आज जितने हैं उतने वे पहले कभी नहीं थे ।"

लेकिन अंग्रेज जब हिन्दू-मुस्लिम फूट पर सुख की साँस ले रहे थे, तब एक दशक ऐसी आई, जिसमें न केवल मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन में शरीक हो गए, बल्कि वे हिन्दुओं से भी एक कदम आगे निकल गए । वह १९१०-२० की दशक थी । मुस्लिम जन जागरण की इस दशक के पहले आगा खाँ मुसलमानों के नेता थे, जिनके बारे में जवाहरलाल नेहरू अपनी आत्म कथा में लिखते हैं : "आगा खाँ मुसलमानों के नेता के रूप में आगे आए, इसी से यह पता चलता है कि वे (मुसलमान) सामन्तीय परम्पराओं से चिपके हुए थे, क्योंकि आगा खाँ कोई बुर्जुआ नेता नहीं थे । वे एक बेहद रईस महाराव थे, और एक मजहबी फिरके के अध्यक्ष थे, और अंग्रेजों के लिहाज से वे बिलकुल माकूल थे, क्योंकि ब्रिटिश शासक वर्ग से उनका घरोपा था । वे बहुत सुसंस्कृत थे, प्रायः योरप मे रहते थे, जैसे खेलकूद में मशगूल इंग्लैण्ड के बड़े-बड़े जागीरदार रहते हैं ।"

सर वेलेनटाइन शिरोल के अनुसार आगा खाँ ने लॉर्ड मिण्टो को जताया कि बंगाल के बँटवारे के वाद जो हिन्दू अशान्ति पैदा हुई है, उससे मुसलमान अलग हैं, और वे नहीं चाहते कि सरकार जल्दबाजी में ऐसी कोई रियायत दे वैठे, जिससे ब्रिटिश हुकूमत भी खतरे में पड़ जाए, और मुसलमान भी हिन्दू वहुमत के अँगूठे के नीचे आ जाएँ।

लेकिन अगली दशक में जब खिलाफत का भीषण ज्वार आया, तो आगा खाँ जैसे उदार रईस अकेले पड़ गए। स्वयं आगा खाँ ने १९१४ में एडिनवरा रिव्यू में एक लेख लिखा, जिसमें हिन्दू और मुसलमान को अलग करने की ब्रिटिश नीति का उन्होंने विरोध किया, और कहा कि दोनों कौमों के नरमदलीय लोगों को एक होकर उग्रपंथियों का मुकावला करना चाहिए। जव मुस्लिम उग्रता ने उनकी नेतागिरी खतरे में डाल दी, तो वे नरम हिन्दुओं से हाथ मिलाने की वकालत करने लगे। इससे स्पष्ट है कि उनकी रुचि इस्लाम में नहीं, वल्कि राजनीति के रथ को रोकने में थी। रथ नहीं रुका। मुसलमानों में नये नेता पैदा हुए, और वागडोर आगा खाँ के हाथ से निकल गई।

प्रथम महायुद्ध छिड़ा तो आगा खाँ ने दुनिया भर में इस्माइली जमातों से आव्हान किया कि वे अंग्रेजों की मदद करें। जव तुर्की युद्ध में कूदा और खलीफा अंग्रेजों के खिलाफ हो गए, तो भारत के मुसलमानों की वफादारी भी खलीफा के प्रति मुड़ गई, और खिलाफत आन्दोलन शुरू हो गया। लेकिन आगा खाँ ने तव भी ब्रिटेन के प्रति वफादारी की अपील की, हालाँकि उन्होंने तुर्की के लिए चन्दे में २००० पौंड से अधिक दिये। युद्ध खत्म हुआ तो उन्होंने तुर्की के प्रति रहम और नरमी की अपील लन्दन से की।

आगा खाँ की अव तक की सेवाओं के लिए अंग्रेजों ने उन्हें ११ तोपों की सलामी का दर्जा दिया, जैसा कि राजाओं को मिलता था। १९१९ के सुधार कानून का मसविदा तैयार करने में भी उनकी काफी मदद ली गई।

मुस्लिम लीग में आगा खाँ ज्यादा दिन निभ नहीं सके। एक धर्मगुरु के नाते उनका सम्बन्ध वम्बई के करोड़पतियों से और उत्तर-प्रदेश के जमींदारों से था, और वे प्रकट अंग्रेज भक्त थे, और मुसलमानों को ऐसी पार्टी की जरूरत थी, जो मध्यमवर्ग की भावनाओं को भी व्यक्त कर सके। इसलिए १९१६ में आगा खाँ लीग से निकल कर एक मुस्लिम कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष वन गए। वे खिलाफत के दिन थे, और लीग कांग्रेस के साथ मिल कर जनवादी हो रही थी। ऐसे दल से आगा खाँ की पट नहीं सकती थी। लेकिन जब साइमन कमीशन भारत आने लगा तो मुस्लिम पार्टियाँ फिर एक होने लगीं। १९२९ में एक सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलन हुआ, जिसकी अध्यक्षता एक बार फिर आगा खाँ ने की। इस सम्मेलन में जिन्ना के वे चौदह सूत्र मंजूर किए गए, जिन्हें १९३० की गोलमेज़ परिषद् में पेश किया गया।

१९३०-३२ के बीच जो दो गोलमेज़ परिषदें लन्दन में हुई, उनमें आगा खाँ ने मुस्लिम प्रतिनिधिमण्डल का ही नेतृत्व नहीं किया, वल्कि ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधिमण्डल की अध्यक्षता भी की।

डॉ. सुशीला नैयर अपनी डायरी में २ सितम्बर १९४२ की तारीख के अंतर्गत गोलमेज़ परिषद् के कुछ संस्मरण लिखती हैं :

"....एक रोज बापू को मुसलमानों ने अपनी सभा में बुलाया। वहाँ पर सब वापू की चापलूसी करने लगे, 'आपके लिए क्या मुश्किल है साहब, आप श्री जिन्ना की चौदह माँगे पूरी कर दें।' आगा खाँ ने शुरू किया, 'आप बड़े महात्मा हैं। आपके लिए इतना कर देना एक खेल है....' वगैरा वगैरा। बापू ने कहा, 'आपको इस तरह मेरी हँसी उड़ाना शोभा नहीं देता। मैं कौन हूँ ? आपके तो इतने अनुयायी हैं। मेरे पीछे कौन है ? मुझे कांग्रेस ने एक काम के लिए भेजा है। दूसरा काम करने का मुझे कांग्रेस ने अधिकार नहीं दिया। इसके लिए डॉ. अंसारी की मदद की मुझे जरूरत है।'

"शौकतअली भी कहने लगे, 'सरकार आप इतना कर दें। आपके लिए यह कौनसी बात है ?' बापू कहने लगे, 'शौकतअली, तुम्हारे लिए यह मुनासिब नहीं है। तुम आज कहाँ मेरे पीछे चलते हो ? फिर मैं तुम्हारा 'सरकार' कैसे रहा ?" वह कहने लगे, 'नहीं सरकार, आप इतना कर दें, फिर हम आपके पीछे ही हैं।"

बापू ने आगे बात चलाते हुए कहा, "श्री जिन्ना तो पूरे राजनैतिक तरीके से पेश आए। एक बार उन्होंने मुझे अपने निवास स्थान पर बुलाया था। अँगीठी के सामने मेरे साथ जमीन पर बैठ गए। कहने लगे, 'आप बड़े महात्मा हैं। ये तो मामूली चीजें हैं। आप इनको मंजूर कर लें।' मैंने कहा, 'मैं यह सब तब तक नहीं कर सकता, जब तक डॉ. अंसारी से न पूछ लूँ। हिन्दू-मुसलमान के मामले में वही मेरा रहनुमा है। उसके बिना मैं एक कदम नहीं उठा सकता।' उन्हें वह मंजूर न था। फिर मजलिस में आए। बेगम शाहनवाज भी वहाँ थीं, और वे भी उसी रंग में रंगी हुई थीं। उसी तरह मुझसे कहने लगीं, 'आप महात्मा हैं। इतना कर देने में क्या मुश्किल है ?' तब मैं रो पड़ा। मैंने कहा, 'और सब तो इस रंग में पूरी तरह रंगे जा चुके हैं, मगर औरत होकर तुम भी इसमें हिस्सा लेती हो—यह मुझसे सहन नहीं होता।' हिन्दू-मुसलमानों के समझौते की बात टूटी, और दूसरे रोज सुबह ही सरकार का साम्प्रदायिक निर्णय हमारे हाथों में आ गया।"

आगा खाँ को कई अन्तर्राष्ट्रीय रोल भी मिले। १९३२ में उन्होंने विश्व निरस्त्रीकरण सम्मेलन में भाग लिया। १९३२, और १९३४-३७ में वे लीग ऑफ नेशन्स में भारत के प्रतिनिधि के रूप में भेजे गए। १९३७ में लीग ने उन्हें अपना अध्यक्ष चुन लिया। आगा खाँ इस माने में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के पूर्वज थे।

आगा खाँ तृतीय की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति उनके घोड़ों के कारण भी थी। उनका अस्तबल विश्व के प्रसिद्धतम अस्तबलों में एक था। पाँच बार उन्होंने डर्बी की घुड़दौड़ जीती।

•

दूसरे महायुद्ध के दौरान आगा खाँ ने राजनीति से सन्यास ले लिया। वे प्राय: योरप में ही रहने लगे। शायद उन्हें लगा हो कि भारत को स्वाधीन करके जव अंग्रेज चले जाएँगे, तव नये पर्यावरण में उन्हें पुराना महत्व और सम्मान शायद न मिले। जो भी हो, अपने अन्तिम वर्ष आगा खाँ ने भारत से अलग थलग रह कर ही विताए। उनका पूना का महल कारावास वना, फौजी छावनी वना, स्कूल वना, लेकिन वे नहीं लौटे। जैसे आगा खाँ किसी जमाने में ईरान से विदा होकर आए थे, वैसे ही अब वे भारत से विदा हो गए हैं!

अव खोजा लोगों के इस्माइली फिरके के वारे में कुछ शब्द! इस्माइली धर्म शिया मुसलमानों के एक फिरके का धार्मिक व राजनैतिक आन्दोलन है। आठवीं सदी के मध्य में इस्माइल नामक महापुरुष हुए, जिनके नाम पर यह मजहब के अन्दर मजहव चल पड़ा। नवीं सदी के मध्य में वहुतेरे मिशनरी इस्लामी दुनिया में इधर उधर गए, और उन्होंने सन्देश दिया कि इस्माइल का लड़का मोहम्मद (जो वहुत दिन पहले मर चुका था) मेहदी या मसीहा वन कर लौटने वाला है।

इस्माइली फिरके की शाखाएँ फूटने लगीं। ९०९ में ओबेदुल्ला ने अपने आपको इमाम घोषित कर दिया, और अज्ञात इमामों की एक वंशावलि वन गई जो प्राचीन काल से चले आ रहे थे।

९६९ में मिश्र पर विजय प्राप्त करने के वाद दो शताब्दियों तक फातिमी (मोहम्मद की लड़की फातिमा से जन्मे) इस्माइलियों ने मिश्र पर राज किया। वे मिश्र के जगमगाते वर्ष थे, जिनका अपना इतिहास हैं। लेकिन १०९४ में अल मुस्तन्सिर की मृत्यु के वाद

इस्माइलियों में फूट पड़ गई। मिश्र का फिरका अलग हो गया, और फारस व शाम का अलग। मिश्र में अल मुस्ताली को इमाम मान कर मुस्तालिया फिरका बना, और फारस में निज़ार को इमाम मान कर निज़ारियों का। सुलतान सालादीन ने जब ११७१ में मिश्र को जीत लिया, तो इस देश से इस्माइली प्रभाव का अन्त हो गया, और मुस्तालिया फिरका सिर्फ यमन में जीवित रहा। यमन से चलते चलते वह सोलहवीं शताब्दी में भारत आया। भारत के सभी बोहरे इस फिरके की उपज हैं। यह फिरका दाई को अपना धर्मगुरु मानता है। भारत में बोहरों के दाई सूरत में रहते हैं।

निज़ारिया फिरके ने फारस और सीरिया में कई किले फतह कर लिये, और अपना राज कायम कर लिया। उन लोगों का नाम बाद में हशीशी पड़ गया, क्योंकि ये अपने विरोधियों का खात्मा मौत के साथ ही करते थे। अंग्रेजी का शब्द असेसिन इसी हशीशी का अपभ्रंश है, और फारस के हशीशियों को आज तक "द असेसिन्स" के नाम से जाना जाता है।

१२५६ में जब फारस पर मंगोलों का हमला हुआ, तो हशीशी राज वहाँ से खत्म हो गया। शाम (सीरिया) पर ममलूक तुर्कों ने कब्जा कर लिया। फिर भी इस्माइली लोग एक धार्मिक पंथ के रूप में बने रहे। चौदहवीं सदी में निजारिया फिरके में फिर फूट पड़ गई, और उसकी दो शाखें हो गईं। इसका नतीजा यह हुआ कि सोलहवीं सदी में छोटी शाखा के प्रधान ताहिरशाह हिन्दुस्तान चले आए। अगले दो सौ साल तक उनके वंश की जानकारी हिन्दुस्तान में मिलती है।

और जैसा कि हम देख चुके हैं १८३८ के विद्रोह के बाद आगा खाँ प्रथम को भी फारस से भाग कर हिन्दुस्तान आना पड़ा। इस्माइली कौम के सभी फिरके इस प्रकार आगे पीछे भारत आए हैं—पहले बोहरे, फिर ताहिर शाह, और फिर खोजा जमात के नेता आगा खाँ।

लेकिन आश्चर्य की वात यह है कि इतने उतार चढ़ावों के वाद भी इस्माइली समाज आज पूर्वी अफ्रीका से लेकर हिन्दुस्तान तक संगठित है, और उसमें एकता का अहसास है। खोजा जाति के नेता और इमाम मिश्र से फारस, और फारस से हिन्दुस्तान, और हिन्दुस्तान से योरप अपना हेडक्वार्टर वनाते रहे, और इन प्रथक भौगोलिक स्थितियों में उन्होंने अलग अलग रोल अदा किया, लेकिन भारत, पश्चिम एशिया और अफ्रीका में फैली २ करोड़ लोगों की इस्माइली कौम की एक-सूत्रता इससे छिन्न भिन्न नहीं हुई।

इस एक सूत्रता का श्रेय हम चारों आगा खाँ को दे सकते हैं। जब दुनिया में औद्योगिक क्रांति आई, तो खोजा भी वदलने लगे, और उद्योग तथा व्यापार के पाश्चात्य तरीकों को उन्होंने सबसे पहले अपनाया। भारत में इस्लाम जब आम तौर पर पिछड़ा हुआ था, तव खोजा कौम ने कठमुल्लापन छोड़ कर अपना आधुनिकीकरण किया। बैंकों में, बीमा कम्पनियों में, भवन निर्माण संस्थाओं में उन्होंने दिलचस्पी ली और वे अग्रणी वन गए।

मुस्लिम उच्चवर्ग के राजनैतिक स्वरूप को समकालीन लोगों ने पहचाना न हो, ऐसी बात नहीं है। १९२३ के काकिनाडा काँग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद अली थे। उन्होंने अपने भाषण में मुस्लिम साम्प्रदायिकता के उद्गम की छानबीन की, और बताया कि आगाखाँ के नेतृत्व में जो प्रतिनिधिमण्डल वाइसराय से १९०६ में मिला था, वह अंग्रेजों ने ही बुलवाया था, और अंग्रेजों की भरी हुई चाभी के कारण ही इन लोगों ने अलग वोटर-सूचियों की माँग रखी।

१९३०-३२ की गोलमेज परिषद् में जो हिन्दुस्तानी लोग बुलवाए गए थे, उनके बारे में जवाहरलाल नेहरू अपनी आत्मकथा

में लिखते हैं : वे लोग एक बहुरूपिया भीड़ थे। उनमें से अधिकांश अपने आपको छोड़ कर किसी के प्रवक्ता नहीं थे। कुछ लोग योग्य और इज्जतदार थे, लेकिन दूसरे बहुत से लोगों के बारे में इतना भी नहीं कहा जा सकता। सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से वे भारत के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी तत्वों का प्रतिनिधित्व करते थे। वे लोग इतने पिछड़े हुए और प्रतिक्रियावादी थे कि भारतीय लिबरल नेता, जो भारत में बड़े नरम और सावधान माने जाते हैं, उनकी सोहबत में प्रगतिशीलों की तरह चमकने लगे। वे ब्रिटिश साम्राज्य से बँधे हुए भारत के निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते थे, अपनी उन्नति और संरक्षण के लिए साम्राज्य की ओर देखते थे।.....हाइनेसों, लार्डों और नाइटों की यह जमात भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती थी।.....यह उपयुक्त ही था कि साम्राज्यवादी, सामन्तवादी, आर्थिक, औद्योगिक, धार्मिक व साम्प्रदायिक इन–सारे निहित स्वार्थों की महासभा में ब्रिटिश हिन्दुस्तान के प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व करने का मौका आगा खाँ को मिला, जिनके व्यक्तित्व में कमोबेश इन सभी हितों का संयोग था। एक पीढ़ी से ज्यादा वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ और शासक वर्ग के साथ सम्बद्ध थे, ज्यादातर इंग्लैण्ड में रहते थे, और इसलिए हमारे शासकों के हित और दृष्टिकोण को वे पूरी तरह समझ सकते थे, और उसके प्रवक्ता बन सकते थे। उन्हें तो गोलमेज परिषद् में साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड का नुमाइन्दा होना चाहिए था। लेकिन यह एक विडम्बना है कि वे भारत के नुमाइन्दे माने जाते थे। .....यह कल्पना करना जरा कठिन है कि आगा खाँ कभी हिन्दुस्तान की आज़ादी के हक में बोल सकते थे।"

आगा खाँ जब गोलमेज परिषद् में गए, तब उन्होंने लॉर्ड लायड और उनकी पार्टी से दोस्ती की, जो ब्रिटिश राजनीति की सबसे प्रतिगामी और खतरनाक पार्टी मानी जाती थी। यही नहीं, उन्होंने योरपियन असोसिएशन से भी समझौते किए, जो भारत की आजादी

का विरोध करने वाली सबसे कट्टर विलायती संस्था थी। वह सिर्फ भारत में बसने वाले अंग्रेजों की ओर से बोलती थी। कंजर्वेटिव पार्टी के नेताओं के साथ तो उनकी आत्मीयता थी ही। अक्टूबर, १९३४ में उन्हें ब्रिटिश नेवी लीग के एक भोज में निमंत्रित किया गया। इस समारोह की अध्यक्षता लॉर्ड लॉयड ने की। अपने भाषण में आगा खाँ ने ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए इतनी अधिक चिन्ता बतलाई और इतने अधिक शस्त्रीकरण का उन्होंने समर्थन किया कि जितना स्टेनली बाल्डविन और ब्रिटेन की सरकार भी पसन्द नहीं करती। लेकिन फिर भी विश्व निःशस्त्रीकरण सम्मेलन में वे भारत के नेता थे। गाँधी नहीं, बल्कि आगा खाँ।

लॉर्ड लॉयड और आगा खां के बीच इतना करीब का रिश्ता हो गया था कि वे एक राजनैतिक युग्म बन गए थे, जैसे भारत में एम. आर. जयकर और तेजबहादुर सप्रू थे। लॉर्ड लॉयड कंजर्वेटिव पार्टी की उस समय तीव्र से तीव्र निन्दा कर रहे थे क्योंकि उन्हें भय था कि कंजर्वेटिक नेता भारत को जरूरत से ज्यादा आजादी दे देंगे। नवम्बर १९३४ में कहते हैं लन्दन में एक फिल्म निजी तौर पर दिखाई गई, जिसका उद्देश्य मुस्लिम विश्व को ब्रिटिश ताज से हमेशा हमेशा के लिए बाँधना था। इस फिल्म शो के मुख्य अतिथि आगा खाँ और लॉर्ड लॉयड थे।

तो १९३२ के लंदन में एकत्रित राजा महाराजाओं, जमींदारों और करोड़पतियों की सभा में नंगे भूखे हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि के रूप में अकेले गाँधीजी बैठे थे। गोलमेज परिषद् में गाँधी की उपस्थिति के साथ जो व्यंग्य, जो विडम्बना जुड़ी हुई है, वही विडम्बना आगाखाँ महल में गिरफ्तार गाँधी के साथ भी है। आगा खाँ महल सचमुच उन सारी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था, जिनके खिलाफ कांग्रेस बरसों से जूझ रही थी।

गोलमेज के गाँधी के बारे में जवाहरलाल लिखते हैं : "उस भीड़-भरे स्वर्णमण्डित सभागृह में गाँधी जी बैठे थे : बिलकुल एकाकी एक आकृति ! उनकी पोशाक, या यों कहिए पोशाक का अभाव, उन्हें सभी लोगों से अलग करता था। उनके विचार और दृष्टिकोण में, और आसपास बन ठन कर बैठे लोगों के दृष्टिकोण में तो और भी ज्यादा अन्तर था। उस सम्मेलन में उनकी हालत बेहद ज्यादा मुश्किल थी, और दूर से हमें आश्चर्य होता था कि वे इसे सहन कैसे कर लेते हैं।"

आगा खाँ महल में भी बन ठन कर बैठने वाले महारावों की प्रेत छायाएँ मौजूद थीं, और उनके बीच गाँधी निपट एकाकी थे। सुनहरे गुम्बद वाला एक साम्राज्य, जिसमें सुनहरी वर्दियाँ पहने वजीर और हाकिम हुक्काम, और एक नंगा भूखा देश, इस सुनहरे साये में तड़पता हुआ और गिरफ्तार।

प्रिंस करीम ने अच्छा किया जो आगा खाँ महल भारत को दे दिया। अतीत के प्रेतों को उन्होंने अंतिम रूप से दफना दिया। २२ फरवरी १९६९ को आगाखाँ महल की हरी घास पर जो समारोह हुआ वह एक प्रतीकात्मक टेब्लो था, एक लघु सत्ता-हस्तान्तरण था। अंग्रेजों ने जो किया, वह आगे पीछे आगाखाँ को तो करना ही था। पूना का अपना महल त्याग कर आगा खाँ ने ब्रिटिश साम्राज्य से अपना नाभि-नाल सम्बन्ध समाप्त कर दिया। आज वे पहली बार भारत के इस्माइलियों के मात्र धर्मगुरु हैं, और अपने पैरों पर खड़े हैं। २२ फरवरी १९६९ के बाद आगा खाँ की पदवी की गरिमा कुछ बढ़ी है।

१९४२ : भारत छोड़ो

अगस्त १९४२ के भारत छोड़ो प्रस्ताव के बाद गाँधी की गिरफ्तारी ऐसी हुई, जैसे पूर्णाहुति के ठीक पहले यज्ञ भंग हो गया हो, और मंडप में बैठे सारे लोगों को जेल में ठूंस दिया गया हो। गाँधी का इरादा था कि १९४२ का आंदोलन एक विशाल दावानल होगा, जो साम्राज्य को भस्म कर देगा। वे कह चुके थे कि पहले जैसी आरामदेह जेल यात्राएं अब नहीं होंगी, अब तो ऐसा समर होगा, जिसमें लाखों लोग मारे जायेंगे। हो सकता है गोलियाँ चलें या बम बरसाए जाएँ। अब हम जेल को नहीं मौत को निमंत्रण देंगे। करेंगे या मरेंगे। बहुत ही तेजी से एक संक्षिप्त आन्दोलन होगा, जिसमें इस पार या उस पार का फैसला हो जाएगा। लेकिन यह दावानल अहिंसक होगा। गाँधी जानते थे कि सरकार अपने दमन से इस आन्दोलन को हिंसक और उपद्रवग्रस्त बना सकती है, लेकिन इस बार वे यह जोखिम उठाने को तैयार थे।

करेंगे या मरेंगे। क्या करेंगे? कैसे मरेंगे? ऐसा कौनसा काम होगा, जिसे रोकने के लिए पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ें? गाँधी इसे परिभाषित नहीं कर सके, क्योंकि वे गिरफ्तार हो गए। शायद उन्हें मालूम भी नहीं था कि किस ढंग का आंदोलन वे चलायेंगे। गाँधी के सारे ऐतिहासिक निर्णय तात्कालिक थे। १९२० की कलकत्ता काँग्रेस में जो असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ, वह उन्हें कोई चौबीस घंटे पहले सूझा। दक्षिण अफ्रीका में निष्क्रिय प्रतिरोध का विचार उन्हें

जोहानसवर्ग के भारतीयों की सभा में एकाएक १९०६ में सूझा। दाँडी यात्रा और नमक सत्याग्रह भी क्षणिक प्रेरणा से जन्मे। १९४२ में गाँधी को क्या प्रेरणा होती, यह कौन कह सकता है। उनका तो इरादा यह था कि तीन हफ्ते तक कोई आँदोलन न किया जाए, और वाइसराय से चर्चा की जाए। उसके वाद ? उसके वाद का कार्यक्रम बहुत निश्चित नहीं था। गाँधी ने ७ अगस्त १९४२ को कुछ आदेश तैयार किए थे, जो वाइसराय से चर्चा असफल होने के वाद कांग्रेसजनों को दिए जाने थे। फिलहाल वे गोपनीय थे। लेकिन उनमे कोई नया या चौंकाने वाला कार्यक्रम नहीं था। शहरों में तो जुलूस और सभा भी न करने की सलाह थी, ताकि गड़वड़ें न हों। सिर्फ एक दिन की हड़ताल और चौवीस घंटे के उपवास का, और सत्याग्रह का ध्येय जनता को समझाने का आदेश कांग्रेसियों को दिया गया था, और आजादी तक संघर्ष करते रहने का आव्हान था। लेकिन कैसा संघर्ष, और १९२० और ३० के संघर्षों से किस माने में भिन्न संघर्ष ?

हर सत्याग्रही को शपथ लेनी थी कि वह स्वाधीन होगा या मरेगा। लेकिन रेल, डाक, तार, और सरकारी कारखानों में काम करने वाले मजदूरों को फिलहाल शामिल करने का कोई इरादा नहीं था, हालाँकि गाँधी ने लिखा है कि इन लोगों को भी शामिल करने की नौबत आ सकती है।

हाँ, इस वार गाँधीजी ने सिर्फ नमक कर ही नहीं, बल्कि लगान (भूराजस्व) देने से इंकार करने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने लिखा है कि अब तक भूमि कर को ठुकराने की हद तक हम नहीं गए हैं, क्योंकि देश इस हद तक जाने के लिये तैयार नहीं था। लेकिन अब समय आ गया है कि जिनमें साहस हो, वे लगान देना वन्द कर दें। काँग्रेस का विश्वास है कि जमीन उसकी है, जो उसे जोतता है, और किसी की नहीं। किसान अपनी पैदावार किसी को देता है, तो इसलिए कि उसके हितों की रक्षा हो। जहाँ जमींदारी प्रथा है, वहाँ किसान जमींदार को

उसके हिस्से का लगान दे सकता है। लेकिन जहाँ जमींदार सरकार के साथ है, वहाँ कोई लगान नहीं दिया जाना चाहिए। इससे फिलहाल रैयत बरबाद हो जाएगी। इसलिए जो बरबाद होने के लिए तैयार हो वही भू-राजस्व देने से इन्कार करे।

लेकिन इन आदेशों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि गाँधीजी की उपस्थिति में १९४२ का आन्दोलन कैसा रूप लेता। १९४२ में दरअसल कांग्रेस संचालित कोई आन्दोलन हो ही नहीं पाया। जो हुआ, वह जनता के पागल क्रोध का नतीजा था जिसके लिए गाँधी ने कांग्रेस को जिम्मेदार नहीं माना।

एक विप्लवकारी आन्दोलन के कगार तक महात्मा गाँधी कैसे पहुँचे, यह अपने आप में एक कहने योग्य कहानी है। आगा खाँ महल के साथ वे सारी घटनाएँ पृष्ठभूमि के रूप में जुड़ी हुई हैं, जो द्वितीय महायुद्ध के आरम्भ से लेकर भारत छोड़ो प्रस्ताव तक घटीं।

३ सितम्बर १९३९ को जब द्वितीय महायुद्ध का आरम्भ हुआ, तो अंग्रेज वाइसराय ने बिना किसी से पूछे ताछे ४० करोड़ हिन्दुस्तानियों की ओर से उसी दिन युद्ध घोषित कर दिया। युद्ध के कारण गाँधी किंकर्त्तव्य विमूढ़ से हो गए, और वे ईश्वर से झगड़ने लगे कि उसके राज में इतनी हिंसा और अनाचार क्यों है। दो दिन बाद वे वाइसराय के बुलावे पर शिमला गए, और लन्दन के संसद भवन और वेस्टमिंस्टर एबी के विनाश की कल्पना करके वे फूट पड़े। उन्होंने लार्ड लिनलिथगो से कहा कि भारत की नैतिक सहानुभूति इंग्लैण्ड के साथ है। उनकी पहली प्रतिक्रिया बिना किसी शर्त के इंग्लैण्ड को नैतिक सहायता देने की थी। शर्तें इसलिए नहीं कि ब्रिटेन के संकट का लाभ वे भारत के हित में कतई नहीं उठाना चाहते थे, और नैतिक सहायता इसलिए कि युद्ध की विकरालता ने उनकी अहिंसा को चुनौती दी थी, और वे इंग्लैण्ड को भी सलाह दे रहे थे कि यदि हिटलर की फौजें घुसें, तो घुसने दो, कत्ल करें तो करने दो, मकान में आएँ

तो उन्हें खाली कर दो, जो भी लूटें लुटा दो, लेकिन उन्हें अपनी आत्मा न दो। वे कह रहे थे कि हिटलर का मुकाबला करने में इंग्लैण्ड को भी हिटलर जैसा होना पड़ेगा, । जो भी हो, इस बार गाँधी प्रथम महायुद्ध की तरह रंगरूट भर्ती करने वाले सार्जेण्ट नहीं बने।

गाँधी सरकार को नैतिक समर्थन देकर बदले में कुछ नहीं लेना चाहते थे। यदि आजादी मिल जाती तो भी इस मनःस्थिति में वे अंग्रेजों को भौतिक मदद नहीं देते। कांग्रेस सरकार को पूरा फौजी समर्थन देने के लिये तैयार थी, लेकिन इसके लिए कांग्रेस की पहली शर्त यह थी कि भारत आज़ाद हो। अंग्रेजों को न गाँधी के नैतिक समर्थन की जरूरत थी, न उन्हें भारत को आज़ादी देना था। जहाँ तक फौजी मदद का सवाल है, वह उन्हें भरपूर मिल रही थी। कांग्रेस ने वर्षों में जितना चन्दा इकट्ठा नहीं किया, उतना चन्दा अंग्रेजों की झोली में एक दिन में आ जाता था। गाँधीजी सेवाग्राम से जो तार देते, जो पोस्ट-कार्ड लिखते, उसमें से कुछ पैसे सरकार के युद्ध फण्ड में चले जाते। अंग्रेजों के पास एक राजनीतिमुक्त किराये की सेना थी। वे सिर्फ नैतिक वाहवाही के लिए भारत क्यों छोड़ते, जबकि युद्ध में सबसे पहली लाश नैतिकता की ही गिरती है।

युद्ध के दो हफ्ते बाद कांग्रेस कार्य समिति की बैठक वर्धा में हुई। इसमें गाँधीजी अकेले पड़ गए। काँग्रेस ने अंग्रेजों से माँग की कि इंग्लैण्ड के युद्ध लक्ष्य क्या है, विशेष कर भारत के सम्बन्ध में उसके युद्ध लक्ष्य क्या हैं, यह शीघ्र परिभाषित किया जाए। कांग्रेस ने कहा नाजीवाद और फासिज्म का हम विरोध करते हैं, और हमारी सहानुभूति प्रजातंत्र के साथ है। लेकिन मित्र राष्ट्रों का साथ देने के पहले हमें यह तो मालूम हो कि प्रजातंत्र के नियम भारत पर लागू होंगे या नहीं ? ब्रिटेन अपना साम्राज्य छोड़ेगा या नहीं ? ब्रिटेनवाले घर में प्रजातंत्र मानते हैं, यह ठीक है। लेकिन क्या कोई नौकर अपने मालिक के कोड़े यह सोच कर सहन कर सकता है कि मालिक के रिश्ते अपने बीवी बच्चों से बहुत अच्छे हैं ?

युद्ध-लक्ष्य की माँग से गाँधीजी सहमत हो गए। उन्हें लगा कि ब्रिटेन से मदद का मुआवजा लेना उचित नहीं है; लेकिन फिर यह भी तो उचित नहीं है कि संकट की दुहाई देकर इंग्लैण्ड अपने साम्राज्य के चंगुल को और भी कस ले, और संकट उसके लिए वरदान सिद्ध हो। भारत युद्ध में पक्षधर बने, इसके पहले यह तो मालूम हो कि युद्ध है किसलिए, और भारत को उससे क्या मिलेगा ?

लेकिन गाँधी निराश रहे कि कांग्रेसवालों ने अहिंसा को सिर्फ अंग्रेजी राज से लड़ने का एक पैंतरा माना है, और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में वे अहिंसा को कोई महत्व नहीं देते। वे चाहते थे कि भारत पर हमला होने पर भी भारत फौज न भेजे, बल्कि अहिंसक अहसयोग करे। जिस तरीके से आप विदेशी हुकूमत को घर से भगा रहे हैं, उसी तरीके से विदेशी हमलाकर को आप घर में आने से रोक क्यों नहीं सकते ? उन्हें लगा कि भारत की अहिंसा एक निर्बल जाति की निष्क्रिय अहिंसा है, बलवान कौम की सक्रिय अहिंसा नहीं। और अगर कांग्रेस को हिंसा से कोई एतराज नहीं, तो यह मेरी गलती है कि मैंने बीस साल तक इस संस्था को सशस्त्र संघर्ष की विद्या नहीं सिखाई और फौजी तालीम नहीं लेने दी। अगर कांग्रेस एक लड़ाकू सेना होती, तो वह अंग्रेजों के संकट का लाभ उठा कर साम्राज्य को नष्ट भी कर देती, और विदेशी हमलावर को हथियारों से रोक भी पाती। क्या अंग्रेजों के खिलाफ सत्याग्रह का उपयोग सिर्फ इसीलिए हो रहा है कि वे बेचारे अहिंसा के सामने असहाय और खोये से हो जाते हैं ? क्या उन्हें अपनी संवेदन-शीलता का हम दण्ड दे रहे हैं और अपनी कमजोरी तक का लाभ उठा रहे हैं ?

लेकिन कांग्रेस ने तत्काल न तो हिंसक युद्ध छेड़ा, न अहिंसक सत्याग्रह, न ही उसने इंग्लैण्ड को नैतिक समर्थन दिया। गाँधी इस समय सत्याग्रह के खिलाफ थे, क्योंकि कांग्रेस उन्हें एक अनुशासनहीन, अराजक जमात लगती थी, जो साम्प्रदायिक दंगों में और घरेलू

मामलों में पुलिस को पसन्द कर लेती है, विदेशी हमलों में फौज को पसन्द कर लेती है, लेकिन जो सिर्फ अंग्रेजों के खिलाफ सविनय अवज्ञा चाहती है। उन्हें ऐसी कांग्रेस बहुत दुखद थी, जो आंदोलन को महत्वपूर्ण, और रचनात्मक कार्यक्रम को गौण और नगण्य समझती थी। और इंग्लैण्ड की युद्ध योजना में बाधक नहीं बनना जाहते थे, और उस देश से आजादी नहीं छीनना चाहते थे, जिसकी खुद की आजादी खतरें में पड़ी हुई हो। वे इंग्लैण्ड की पराजय नहीं, उसका परिवर्तन चाहते थे। उनका ध्येय हमेशा यह रहा कि इंग्लैण्ड द्वारा स्वेच्छा तथा सद्भावना से प्रदत्त आजादी भारत को मिले। अंग्रेज न होते तो शायद भारत में गाँधी की गुंजाइश ही न होती, क्योंकि नये विजेता को शायद अहिंसा सहने का धैर्य ही न होता।

कई वार गाँधी लिनलिथगो से मिले। लेकिन अंग्रेजों की नीति में कोई मूल अन्तर नहीं आया। वाइसराय ने कहा कि मुसलमानों की प्रवक्ता मुस्लिम लीग है और मुस्लिम लीग पाकिस्तान माँग रही थी। उन्होंने कहा कि युद्ध के बाद १९३५ के कानून में संशोधन किए जाएँगे, लेकिन अल्पसंख्यकों के हितों का विशेष ध्यान रखा जाएगा। (याने १९३२ जैसी एक और गोलमेज परिषद् होगी) कहा गया कि युद्ध के वाद भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाएगा। लेकिन चर्चिल की राय में यह शब्द मात्र एक मुहावरा था, जिसका अर्थ यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय मजलिसों में भारत के चन्द नुमाइन्दे तमाशे के लिए आ जा सकेंगे।

महीने भर बाद अक्टूबर में कांग्रेस कार्य समिति ने फैसला किया कि जिन जिन सूबों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल हैं, वे इस्तीफा दे दें। समिति ने कहा कि भारत की स्वाधीनता से छोटा कोई युद्ध लक्ष्य भारत को स्वीकार नहीं होगा। गाँधीजी ने कहा कि इस मौके पर सत्याग्रह से अराजकता और हिंसा उपजेगी, और अराजकता से भारत की स्वाधीनता कभी नहीं आएगी। अभी हम हड़तालें नहीं करेंगे; क्योंकि

हड़ताल में उपद्रव होंगे और उपद्रव का अर्थ होगा मैं सेनापति पद से स्वयंमेव वर्खास्त हो जाऊँ। फिर इस मौके पर शासन को मुसीबत में डालना भी ठीक नहीं। (क्या काँग्रेस इन वर्षों में आजादी से भयभीत भी थी? क्या वह चाहती थी कि महायुद्ध के झमेले से तो अंग्रेज ही निपट लें तो अच्छा?)

दो महीने वाद इलाहावाद में जब कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई, उस समय गाँधीजी ने सबसे ज्यादा जोर चरखे और कताई पर दिया। उन्होंने कहा कि साम्प्रदायिक एकता, अछूतोद्धार और चरखे के त्रिसूत्रीय कार्यक्रम को कांग्रेसजन जब तक नहीं पालते, तब तक जेल यात्राएँ बेकार हैं। अगर चरखा भारत के घर घर में पहुँच जाए, तो आजादी कल आ जाए।

युद्ध अब तक नाममात्र को चल रहा था। लेकिन मई १९४० से असली लड़ाई शुरू हुई। हिटलर ने उत्तर योरप के देशों को रौंद दिया। नेविल चेम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल प्रधानमंत्री वने। जून में फ्रांस का पतन हो गया और गाँधी ने कहा कि फ्रांस ने आत्म समर्पण करके अभूतपूर्व साहस बताया है, क्योंकि इससे लाखों लोगों की निरर्थक नरवलि रुक गई है। युद्ध के आत्म समर्पण को भी उन्होंने अहिंसक आत्म समर्पण की प्रशंसा दी। इसी क्षण उन्होंने इंग्लैण्ड को भी अहिंसक हो जाने का परामर्श दिया और कहा कि इससे हिटलर के सारे हथियारों की हवा निकल जाएगी। उन्होंने कहा कि तुम हिटलर और मुसोलिनी को निमंत्रित करो और उसे अपना द्वीप, अपने भवन अर्पित कर दो, लेकिन अपना ईमान न दो।

जून में कार्य समिति की जो बैठक वर्धा में हुई, उसमें गाँधी और कांग्रेस अलग-अलग रास्ते पर आ गए। काँग्रेस नागरिक प्रतिरक्षा के लिए अर्धसैनिक स्वयं सेवक तैयार करना चाहती थी, जबकि गाँधी इसके खिलाफ थे। लेकिन नेता और संस्था की यह दरार तीन महीने ही चली थी कि गाँधी ने फिर वागडोर सम्हाल ली। सितम्वर १९४०

में महासमिति की बैठक बम्बई में हुई, जिसमें गाँधी ने प्रतीकात्मक विरोध का अपना कार्यक्रम रखा। उन्होंने कहा कि मैं अहिंसा के कारण युद्ध विरोधी हूँ और दूसरे लोग राजनैतिक कारणों से युद्ध विरोधी हैं। इसलिए आइए, हम सब युद्ध विरोधी प्रचार करें और युद्ध से असहयोग करें। अगर लोगों ने हमारी बात मानी, तो भारत से कोई युद्ध सहायता बाहर नहीं जाएगी। सरकार को आजादी है कि वह युद्ध का प्रचार करे और राजा-महाराजाओं से व रईसों से सहायता ले। हो सकता है हमारे विरोध के बावजूद उसका काम चल जाए। लेकिन एतराज तो हम उठाएँगे ही। अगर सरकार ने यह भाषण स्वतंत्रता हमें दी, तो हम कोई सिविल नाफरमानी का आन्दोलन नहीं करेंगे। हो सकता है अंग्रेज उन लोगों के हाथ में भारत की लगाम इस समय न देना चाहें, जो उनके साम्राज्य के खुले दुश्मन रहे हैं। हो सकता है वे सोचते हों कि युद्ध के समय उनके बन्दोबस्त में बाधा नहीं डाली जाए, क्योंकि आजादी का भी उचित समय होता है। मैं इन तर्कों को समझ सकता हूँ, गाँधी कहते हैं। लेकिन आप हमें युद्ध के खिलाफ तो बोलने दीजिए। आप हमें इतना तो कहने दीजिए कि ये लोग कैसे हैं जो योरप में आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं, लेकिन भारत में आजादी के नाम से मुँह चुराते हैं।

युद्ध के बाद शायद छठी बार गाँधीजी लॉर्ड लिनलिथगो से मिले और फिर अक्टूबर १९४० में कांग्रेस कार्य समिति के सामने उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह की योजना रख दी। कार्यक्रम यह था कि कांग्रेस के कुछ चुने हुए लोग युद्ध विरोधी भाषण देते हुए गिरफ्तार हों। आन्दोलन में संख्या पर जोर नहीं था, बल्कि प्रतीकात्मक प्रभावोत्पादकता पर था। विनोबा भावे प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही चुने गए।

व्यक्तिगत सत्याग्रह पन्द्रह महीने तक चला। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के मंत्री, विधान सभाओं के स्पीकर और सदस्य सब गिरफ्तार

होने लगे। कुल मिलाकर २५ हजार लोग जेल गए और आन्दोलन संख्या की दृष्टि से भी क्षीण नहीं रहा। अंग्रेज नौकरशाहों के लिए यह एक सुखद युग था। सफेद टोपी और खद्दर की धोती पहने हुए मंत्री उन्हें कभी सुहाते नहीं थे। ब्रिटिश राज के क्लब और रेसिडेंसी और सूटबूट और डिनर जेकेट वाले साहब-विश्व में कांग्रेस के मंत्री एक बदरंग जमात के रूप में घुस आए थे और ऐसे मंत्रियों की आज्ञाएँ मानना अफसरों को असह्य लग रहा था। उन्हें मालूम था कि असली मालिक तो गवर्नर ही है। अब जब कांग्रेस आन्दोलन पर उतारू हुई तो अफसरों को मौका मिला कि वे भूतपूर्व मंत्रियों को उनकी सही औकात बता दें।

जून १९४१ में हिटलर ने रूस पर चढ़ाई कर दी और युद्ध के आयाम एक बार फिर बदल गए। जो युद्ध कम्युनिस्ट पार्टी की राय में दो साम्राज्यवादी खेमों का प्रतिक्रियावादी युद्ध था, वह एकाएक अच्छी और बुरी ताकतों का युद्ध बन गया। अच्छी ताकतें थीं-समाजवाद और प्रजातंत्र की और बुरी ताकतें थीं फाशिज्म की। उन्होंने तय कर लिया कि अंग्रेजों को सहायता देना अब हर प्रगतिशील व्यक्ति का कर्तव्य है, क्योंकि रूस यदि हारा, तो सारे विश्व से समाजवाद के दिये बुझ जाएँगे।

यही तर्क श्रृंखला जवाहरलाल नेहरू जैसे इतिहास-चेतन नेता के मर्म को भी छूती थी। नेहरू भारत के स्वाधीनता संघर्ष को समूचे विश्व के प्रगतिशील महाज्वार का अंग मानते थे और उनका भी खयाल था प्रगति का महाज्वार यदि पराजित हो गया, तो भारत की आजादी का कभी प्रश्न ही नहीं उठेगा। नेहरू की हमदर्दी चीन के साथ थी, जिसे जापान कुचल रहा था, रूस के साथ थी जो एक नये विश्व का प्रयोग कर रहा था और इंग्लैण्ड के साथ थी, जिसमें हजार बुराइयों के बावजूद एक गरिमामय संयम था, सहिष्णुता थी और सच्ची प्रजातंत्रीय भावना थी। भारत में ऐसा कोई भी आन्दोलन

चलाना नेहरू के लिए परम पीड़ाजनक था, जो किसी भी रूप में हिटलर या मुसोलिनी या तोजो को मदद पहुँचाता हो। यह संभव है कि युद्ध यदि रूस-जर्मनी और इंग्लैण्ड तक ही सीमित रहता, तो कांग्रेस युद्धकाल में सचमुच कोई वड़ा आन्दोलन नहीं छेड़ती। चर्चिल ने कह दिया था कि अटलांटिक चार्टर की वातें सिर्फ योरप के लिए हैं, वे भारत पर लागू नहीं होतीं। वाइसराय ने अपनी कार्यकारिणी में और रक्षा समिति में कुछ और भारतीयों को दिखावे के लिए भर्ती कर लिया था। लेकिन अंग्रेजों की इस जड़ता के बावजूद शायद कांग्रेस कुछ दिनों और गम खाती क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य का भविष्य अंग्रेजों के हाथ में नहीं, वल्कि युद्ध की प्रतिक्षण वदलती परिस्थिति के हाथों में था।

३ दिसम्वर १९४१ को सरकार ने व्यक्तिगत सत्याग्रह के कैदियों को रिहा करना शुरू किया; और चार दिन वाद ७ दिसम्वर को जापान ने पर्ल हार्बर पर हमला किया और अमेरिका से संघर्ष मोल लेते हुए वह द्वितीय महायुद्ध में कूद पड़ा। पर्ल हार्बर अमेरिका के लिए एक झटका था, और सदमा था। पर्ल हार्बर अमेरिका को भी युद्ध में खींच लाया।

लेकिन पर्ल हार्बर का महत्व भारत के लिए भी कम नहीं था। जो युद्ध भारत के लिए एक किताबी चीज थी, वह एकदम असली हो गई। जो हमला पहले हिंसा और अहिंसा की वारीक सैद्धान्तिक वहसों का विषय था, (क्योंकि वह सुदूर और काल्पनिक था) वह अव भारत की देहली पर आकर खड़ा था। जापान एशिया में दुर्निवार गति से वढ़ रहा था, और साम्राज्यवादी होते हुए भी वह राष्ट्रीय मुक्ति के नारे लगा रहा था। जापान द्वारा जीते गए क्षेत्र में हिंसक मुक्ति आन्दोलन खड़े हो रहे थे, और कठपुतली सरकारें भी, और दोनों के बीच की सीमा रेखा पतली थी। बहरहाल जापान को दक्षिण एशिया के स्वाधीनता युद्धों का जन्मदाता और प्रणेता माना

जा सकता है, क्योंकि जो लोग जापान से गुरिल्ला युद्ध करना सीख गये, वे वाद में अंग्रेजों, फ्रांसीसियों और डचों को वर्दाश्त नहीं कर सकते थे।

लेकिन जापान के युद्ध में कूदने के बाद भी हिंसा-अहिंसा की द्विविधा गाँधी के मन में चलती रही। वारडोली में कांग्रेस कार्य-समिति की जो बैठक उसी माह हुई, उसमें गाँधी पुनः नेता नहीं रहे। उन्होंने कहा कि मैंने व्यक्तिगत सत्याग्रह यह समझकर चलाया कि कांग्रेस को युद्ध से सैद्धान्तिक एतराज है, क्योंकि वह एक अहिंसक संस्था है। लेकिन अव जापान को सामने देखकर आप युद्ध में भाग लेना चाहते हैं, वशर्ते आपकी राजनैतिक शर्तें पूरी कर दी जाएँ। ऐसी हालत में आप मुझे नेतृत्व की जिम्मेदारी से बरी कर दीजिए। और कांग्रेस ने उन्हें वरी कर दिया।

लेकिन घटनाएँ थम नहीं रही थीं। दिसम्बर से मार्च तक जापानियों ने सिंगापुर, मलाया, हिन्द-चीन, फिलिपीन, डच ईस्ट इंडीज आदि सब जीत लिया था। ७ मार्च को रंगून का पतन हो गया। २३ मार्च तक अंडमान द्वीपों पर जापान का कब्जा हो गया। कलकत्ता जापानी वमों के साये में रहने लगा। गाँधीजी की शिष्या मीराबहन (मिस मार्गरेट स्लेड) को लगा कि जापानी सवसे पहले उड़ीसा के समुद्र तट पर उतरेंगे और उन्होंने एक विस्तृत नोट में उन सारी संभावनाओं का जिक्र किया जो जापान के आगमन के बाद खड़ी होंगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को पहली बार एक अन्तर्राष्ट्रीय चुनौती का सामना करने के लिए तैयार होना पड़ा। इससे पहले कांग्रेस तुर्की के खलीफा के भविष्य के वारे में बहुत उद्वेलित हुई थी, लेकिन उसका महत्व मात्र भावुक था। लेकिन अब कांग्रेस के सामने पहली बार यह द्विविधा खड़ी हुई कि विश्व-घटनाओं के संदर्भ में वह कौनसा राष्ट्रीय कदम उठाए। ब्रिटिश साम्राज्य की प्रशंसा में एक मुद्दा अब तक यह था कि उसने विदेशी हमले से भारत की रक्षा की

है। लेकिन अब ऐसा वक्त आ गया था, जब भारत को ब्रिटेन का उपनिवेश होने की सज़ा मिलने वाली थी।

रंगून के पतन के चार दिन बाद विंस्टन चर्चिल ने एक केबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की, जिसके नेता स्टेफर्ड क्रिप्स थे। यह मिशन कुछ तो फ्रेंकलिन रूजवेल्ट के आग्रह के कारण और अमेरिका के सामने दिखावा करने के लिए भेजा गया था और कुछ इरादा शायद यह था कि भारतवासी यदि कोरे-मोरे आश्वासनों से मान जाएँ तो ठीक है। स्टेफर्ड क्रिप्स ने युद्ध के बाद ऐसे हिन्दुस्तान की योजना रखी, जिसका संविधान बनाने में सभी राजा-महाराजा और सभी प्रान्त हिस्सा लें, लेकिन अगर उन्हें संविधान पसन्द न आए, तो वे भारत से अलग हो जाएँ। अर्थात् पहले उन्हें दिल्ली में कमजोर से कमजोर सरकार कायम करवाने का मौका दिया जाता और फिर भारत से अलग होने का भी मौका मिलता। छः सौ टुकड़ों में देश को बाँटकर अंग्रेज विदा होना चाहते थे। स्टेफर्ड क्रिप्स इस बात के लिए भी राजी नहीं थे कि युद्ध के दौरान कोई भारतीय रक्षा मंत्री नियुक्त किया जाए, जिसे युद्ध संचालन की पूरी जिम्मेदारी सौंपी जाए। डूबते समय भी इंग्लैण्ड तैयार नहीं था कि नौका के गुलामों को मुक्ति दी जाए।

अप्रेल १९४२ में महात्मा गाँधी को पहली बार भारत छोड़ो आन्दोलन का विचार आया। क्रिप्स की बिदाई के बाद गाँधीजी ने होरेस एलेक्जेण्डर और मिस अगाथा हैरीसन को जो पत्र लिखा, उसमें उन्होंने पहली बार कहा कि अंग्रेजों को व्यवस्थित ढंग से भारत से बिदा हो जाना चाहिए और वह खतरा मोल नहीं लेना चाहिए, जो उन्होंने सिंगापुर, मलाया और बर्मा में लिया।

अप्रेल से जुलाई तक हरिजन के अंकों में, संवाददाताओं से मुलाकातों में, लुई फिशर से हुई बातचीत में गाँधी ने भारत छोड़ो योजना का नक्शा विकसित किया। अंग्रेजों की बिदाई के बाद हर

चीज के लिए तैयार थे। ब्रिटिश राज की समाप्ति के वाद विदेशी सिपाही भारत की जमीन पर न रहें; भारत की सेनाओं को अंग्रेज भंग करके चले जाएँ; हिन्दुस्तान की रियासतें आपस में लड़ने लगें; हिन्दू-मुस्लिम गृहयुद्ध छिड़ जाए; ठगों और डाकुओं का राज हो जाए; लड़ाकू कौमें गैर लड़ाकू कौमों को रौंद दें; किसान जमींदारों की जमीन पर कब्जा कर लें; जापान भारत में घुस आए – हर विकल्प के लिए वे तैयार थे। उनका कहना एक ही था – तुम जाओ, और हमें ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ दो। अगर तुम्हारा विश्वास है कि गुलामी वुरी है, गुलाम वनाना बुरा है, तो तुम एकतरफा फैसला करके गुलामों को मुक्त कर दो। तुम गुलामों से पूछते क्यों हो, उनकी रज़ामन्दी क्यों चाहते हो, यह शिकायत क्यों करते हो कि स्वाधीनता की स्कीम पर वे सहमत नहीं हो पा रहे हैं। तुम्हें डर हो कि हिन्दू वहुमत वहुत अत्याचार करेगा, तो राज मुसलमानों को दे जाओ। मौलाना आजाद और सरदार पटेल दोनों १६४२ के उन दिनों में तैयार थे कि मुस्लिम लीग को शासन सौंप दिया जाए, लेकिन कम से कम अंग्रेज विदा हों।

गाँधीजी का इरादा आरम्भ में तो यह था कि अंग्रेजों के जाने के तुरन्त बाद भारत एक अहिंसक राज्य बन जाए। यहाँ कोई बाहरी फौज न हो। जाते समय सेना तो अंग्रेज भंग करके ही जाएँगे। इस प्रकार स्वाधीन भारत अहिंसक असहयोग द्वारा जापान का स्वागत करेगा। हो सकता है अंग्रेजों के जाने के बाद जापान भारत पर हमला ही न करे। ब्रिटेन के पास क्योंकि साम्राज्य है, इसलिए हर महत्वाकांक्षी देश साम्राज्य जीतने की स्पर्धा में लगा हुआ है। ब्रिटेन का नमूना एक प्रलोभन है, एक चुनौती है। लेकिन इंग्लैण्ड यदि भारत को छोड़ दे, तो एक नैतिक हवा बनेगी, जिससे प्रभावित होकर शायद जापान के इरादे बदल जाएँ।

लेकिन गाँधीजी का नुस्खा ही अकेला नहीं था। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी इस मौके पर अंग्रेजों को परेशान करने के खिलाफ

थे। भारत की फूट से परिचित होने के कारण उन्होंने पाकिस्तान का सिद्धान्त मंजूर कर लेने की भी सिफारिश की। वे इस कारण बेहद अलोकप्रिय हुए। जनता की जवान पर उन दिनों सुभाषचन्द्र बोस का नाम था, जो जापानियों की मदद से आज़ाद हिन्द फौज खड़ी करके भारत की मुक्ति लाते लगते थे। जापान के हाथों इंग्लैण्ड की पराजय से कई भारतीय बेहद हर्षित और उल्लसित थे, और यह कहना कठिन है कि सुभाषचन्द्र बोस को आगे करके यदि जापान सचमुच भारत–विजय करता, तो गाँधी और नेहरू का अहिंसक असहयोग कहाँ तक कामयाव हो पाता, विशेष कर तव जबकि जापान का विरोध अंग्रेजों के साथ सहयोग मान लिया जाता? (मई १९४२ में इलाहाबाद में हुई महासमिति की बैठक में नेहरू मान चुके थे कि हमलावर के साथ अहिंसक असहयोग किया जाए, क्योंकि गैर सरकारी तौर पर वस इतना ही किया जा सकता था। हिंसक विरोध के लिए हुकूमत आवश्यक थी, और हुकूमत हिन्दुस्तानियों को मिल नहीं रही थी)।

लेकिन तीन महीनों में गाँधीजी के विचारों में काफी परिवर्तन हो गया। वे तैयार हो गए कि अगर दिल्ली में हिन्दुस्तानी हुकूमत कायम हो जाए, तो अंग्रेजों को भारत में सेना रखने की और युद्ध चलाने की इजाजत दी जा सकती है। जैसे इंग्लैण्ड और अमेरिका और रूस और दूसरे मित्र-राष्ट्र संधियों द्वारा महायुद्ध में एक दूसरे की मदद कर रहे हैं, वैसे ही भारत और ब्रिटेन भी कर सकते हैं। आखिर तीन साल की कशमकश के बाद गाँधीजी ने वह स्थिति मंजूर कर ली, जो नेहरू और शेष कांग्रेस १९३९ से ही अपनाए हुए थी। एक वार फिर उन्होंने युद्ध-विरोध त्याग दिया।

१९३९ में जो गाँधी अंग्रेजों को विना शर्त समर्थन दे रहे थे, वे १९४२ में अंग्रेजों को तुरन्त निकल जाने की सलाह क्यों देने लगे? जो कांग्रेस १९३९ में अहिंसक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं थी, उसे

१९४२ में दावानल का आव्हान उन्होंने कैसे दिया? भारत में अराजकता और हिंसा की पर्वाह उन्होंने क्यों छोड़ दी? युद्ध का सैद्धान्तिक विरोध उन्होंने कैसे त्याग दिया?

इन सब प्रश्नों का उत्तर एक है: जापानी हमले की आसन्नता। गाँधीजी का तर्क बड़ा सहज था। वे कहते थे कि अगर गुलाम भारत को जापानियों ने जीता, तो हो सकता है भारत के लोग जापान के खिलाफ जूझना पसन्द ही न करें। क्या वे अंग्रेजों की गुलामी कायम रखने के लिए जापानी गुलामी का मुकाबला करें? लेकिन अगर भारत स्वाधीन हुआ, तो उसमें नई जान आ जाएगी और वह प्राणों की बाजी लगाकर नई-नई आजादी की रक्षा करेगा। एक बड़ी भारी लाश को कंधे पर ढ़ोते हुए आप उस लाश की रक्षा कर रहे हैं। उसे आज़ाद कर दीजिए, तो वह जिन्दा हो जाएगी और आपके साथ कंधा मिलाकर लड़ेगी।

गाँधीजी ने अंग्रेजों से कहा कि भारत आज एक नाराज़ और चिढ़ा हुआ देश है। आम आदमी इंग्लैण्ड की हार पर मन ही मन खुशियाँ मनाता है। इस सारे गुलाम क्रोध को तुम जादू से हार्दिक सहयोग में बदल सकते हो। तुम इस बात के लिए तैयार हो कि हिन्दुस्तान को जापान के हाथों में सौंप दिया जाए, और पराजय होने पर ब्रिटिश हुकूमत भारत से महाभिनिष्क्रमण कर दे। लेकिन आश्चर्य है कि तुम भारत को भारतवासियों के हाथों में सौंपने के लिए तैयार नहीं हो और ऐसी संधि के लिए तैयार नहीं हो, जिसके द्वारा तुम ससम्मान भारत में बने रह सको। अगर भारत युद्ध में रौंदा गया, तो तुम्हारे लिए तो सिर्फ ब्रिटिश साम्राज्य के एक सूबे का पतन होगा, लेकिन हमारे हाथ से तो समूचा देश चला जाएगा। युद्ध में किसके दाँव ज्यादा गहरे हैं? साम्राज्य की नाक ज्यादा वजनदार है या भारत का अस्तित्व ज्यादा वजनदार है? युद्ध में तुम ताबड़तोब जान बचाकर भागोगे; तो फिर भारत को व्यवस्थित रूप से सत्ता

हस्तान्तरण करके क्यों नहीं जाते ? जो चीज लूटी जाने वाली है, वह उसके असली मालिक को लौटाकर नैतिक पुण्य क्यों नहीं कमाते ? युद्ध में आपका देश बड़ी-बड़ी जोखिम उठाता है, और अपने अस्तित्व को दाव पर लगाने वाला सट्टा खेलता है। युद्ध में जो आप सैनिक खतरे उठाते हैं, और बड़े-बड़े निर्णय लेते हैं, वैसे क्या आप नैतिकता के स्तर पर एक महान निर्णय लेकर भारत को स्वाधीन करने का खतरा मोल नहीं ले सकते ? इसे लेकर देखिए और युद्धस्तरीय फुर्ती से यह काम निपटाइए। भारत को आज़ाद करने के बाद अगर हम जापान के अधीन बन भी गए, तो आप पर क्या कलंक लगेगा ? आप कह दीजिए कि भारतवासी अपनी स्वाधीनता की रक्षा के काबिल नहीं हैं। लेकिन अगर ब्रिटिश बाहुपाश से भारत छीना गया तो ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठा में बट्टा लग जाएगा। स्वाधीनता की ताजी हवा में अगर हमारा दम घुटता है, तो घुटने दीजिए, क्योंकि गुलामी की जहरीली हवा में भी तो दम घुट ही रहा है।

१९४२ में भारत का मनोविज्ञान एक ऐसे आदमी का मनोविज्ञान था, जो अपनी मुर्दा, लाशनुमा जिन्दगी से तंग आकर अपनी चिता स्वयं जलाने की आजादी चाहता है, ताकि वह जीवित नर्क की पीड़ा से किसी तरह छुटकारा पा सके। ब्रिटिश साम्राज्य के साये में निष्क्रियता से सुरक्षित रहने के बजाय जापान के हाथों सक्रिय रूप से राख हो जाना हिन्दुस्तान को मंजूर था। गुलामी की जिन्दगी के बजाय देश को इच्छित मृत्यु पसन्द थी। भारत १९४२ में एक रस्सियों से बँधा गुलाम था, जो डूबती हुई नाव में अपनी मौत का इन्तजार कर रहा था। नाव का मालिक तूफान से लड़ने में व्यस्त था और कह रहा था कि इस समय आजादी की फिजूल माँग मत करो। ये बातें हम तूफान के बाद देखेंगे। लेकिन गुलाम का कहना था कि रस्सियाँ तोड़ना आज और इसी क्षण जरूरी है। नाव डूबी, तो आप तो तैरकर निकल जाएँगे, लेकिन यह देश रसातल में चला जाएगा। अतः

आइए, आप और हम साथ-साथ तूफान से लड़ें। यह इंग्लैण्ड को मंजूर नहीं था। भारत को बाँधकर वह जंगल की आग से लड़ रहा था, लेकिन उसे यह मंजूर नहीं था कि स्वतंत्र भारत का या तो अपनी किस्मत से दाहसंस्कार हो जाए या वह आग के बीच जीना सीख ले। भारत बड़े से बड़े बलिदान के लिए तैयार था, लेकिन वह कहता था कि बलिदान के पहले स्वाधीनता का तिलक तो लगा दीजिए। स्वेच्छा से जान देना बलिदान है, जबकि अनिच्छा से और जबर्दस्ती मौत के घाट उतारे जाना सिर्फ बूचड़खाने का नरसंहार है। भारत का अंग्रजों से आव्हान था कि वह निरे कसाईखाने को बलिवेदी में परिवर्तित करे। आप लोग भले ही सोचते हों कि आदमी क्या है, सिर्फ युद्ध का बारूद है। वह इच्छा से मरे चाहे अनिच्छा से, लेकिन जब तक वह व्यावसायिक सिपाही की तरह लड़ते-लड़ते मरता है, तब तक क्या फर्क पड़ता है? भारत का कहना था कि फर्क पड़ता है। युद्ध सिर्फ बन्दूकों से नहीं लड़ा जाता, बल्कि जनता की हिम्मत और हौसले से लड़ा जाता है। क्या आप समझते हैं कि एक पूरे के पूरे देश को किराये का टट्टू बना कर आप भारत की या ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा कर लेंगे? क्या गुलाम भारत रूस या चीन की तरह दुश्मन से गली-गली और शहर-शहर में टक्कर लेगा? क्या अंग्रेजों को अपनी छाती पर बनाए रखने के लिए वह जापान को छाती पर नहीं आने देगा? गाँधी ने १९४२ में महायुद्ध का नैतिक पर्याय भारत में ढूँढना चाहा, और ऐसा आन्दोलन सोचा, जो तोपों और संगीनों की आवाज के ऊपर इंग्लैण्ड के मर्म को, उसकी युद्ध से बाहरी अन्तरात्मा को स्पर्श कर सके। युद्ध के समय उन्हें दो विकल्प उपलब्ध थे। एक तो यह कि प्रतिहिंसा की विराट अग्नि में ब्रिटिश साम्राज्य को झुलसा दिया जाए। यह गाँधी का तरीका कभी रहा ही नहीं। वे ब्रिटेन को भारत से खदेड़ना नहीं, बल्कि ब्रिटेन को परिवर्तित करके उसके हाथों से आजादी प्राप्त करना चाहते थे। दूसरा तरीका आत्मपीड़न का था,

जो उन्होंने भारत के लिए चुना था। १६४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन को वे आत्मपीड़न का अभूतपूर्व महाभारत बनाना चाहते थे। जापान के हाथों एक असहाय और निर्वीर्य देश के रूप में झुलसने के बजाय वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान एक पौरुषवान देश की तरह स्वयं आग जलाए, जिससे या तो वह कुन्दन की तरह निकले या भस्म हो जाए। युद्ध की तरह ही संक्षिप्त लेकिन भूकम्पकारी एक आन्दोलन, जो युद्ध की समूची द्वन्द्वभरी चुनौतियों का ऐतिहासिक और अहिंसक जवाब हो।

लेकिन गाँधी के लिए जो जीवन का गंभीरतम अनुष्ठान था, उसे अंग्रेज शासक एक निहायत असामयिक और गैर जिम्मेदार हरकत मानते थे। जब चीन और रूस की आजादी अधर में हो, और सारे एशिया का छत्रपति जापान बनता लग रहा हो, तब गाँधी आन्दोलन का बचपना कैसे कर सकते हैं, यह वे समझ ही नहीं पा रहे थे। उन्हें लगता था कि इसमें गाँधी की चालाकी है, कोई गहरा षड़यंत्र है, जिसे हमेशा की तरह वे नैतिकता का सुनहरा जामा पहनाकर पेश कर रहे हैं। गाँधी को वे हमेशा ईसा के वेश में आया मेकिएवेली समझते रहे, अतः इस बार भी उन्हें लगा कि शायद गाँधी और सुभाषचन्द्र बोस में कोई फर्क नहीं है। सुभाष बाहर से फौज लेकर आ रहे हैं और गाँधी देश में हवा बना रहे हैं। कांग्रेस के नेताओं ने मान लिया है कि ब्रिटेन हारने वाला है और वे युद्ध की विभीषिका से बचने का उपाय कर रहे हैं। अंग्रेजों को लगा कि स्वाधीन होकर भारत के नेता जापानियों से अलग संधि कर लेंगे। हो सकता है कि युद्ध और विदेश नीति में जापान का साथ यदि भारत दे, तो जापान उसे पूरी अन्दरूनी आजादी दे दे और दिल्ली में एक जापान-परस्त सरकार बन जाए। तब गाँधी शायद अपने कदम का औचित्य सिद्ध करने के लिए नये तर्क ढूंढ़ लेंगे। फ्रांस के आत्म समर्पण की यदि उन्होंने सराहना की, तो क्या वे भारत को भी सैनिक आत्म समर्पण

के लिए प्रेरित नहीं कर सकते ? अगर भारत महायुद्ध में हमारा शत्रु बन गया, या केवल तटस्थ ही हो गया तो फिर ब्रिटिश साम्राज्य का क्या होगा, प्रजातंत्र की ताकतों का क्या होगा ? यह ठीक है कि कांग्रेस के नेता नाज़ीवाद और फाशिज्म के विरोधी हैं और उनकी सहानुभूति मित्र राष्ट्रों के साथ है। लेकिन अगर जापान का मौन समर्थक रहकर भारत युद्ध की ज्वालाओं से बच सके, तो भारत के नेता राष्ट्रीय स्वार्थ को ज्यादा महत्त्व देंगे, या अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शवाद को। अगर इंग्लैण्ड के बजाय जापान से भारत का सौदा ज्यादा बेहतर पट सके, तो फिर? रिबेनट्राप से मोलोटोव ने जैसा समझौता किया, वैसा समझौता क्या नेहरू और तोजो के बीच नहीं हो सकता ? अतः युद्ध के दिनों में स्वाधीनता का आन्दोलन या तो बहुत बचकाना है या फिर वह शरारतपूर्ण है। युद्ध के दिनों में ही कांग्रेस अपने सहयोग के लिए नीलाम बोली क्यों लगवा रही है ? क्या इसलिए कि उसे विश्वास है कि जापान ज्यादा ऊँची बोली लगा देगा। फिर स्वाधीनता का अर्थ शत्रु बनने की स्वाधीनता भी तो है। इसलिए हमारे लिए इतना पर्याप्त है कि कांग्रेस १९३९-४१ की तरह प्रतीकात्मक आन्दोलन करती रहे और एक पराधीन देश से पैसा और सिपाही हमें मिलते रहें।

१९४२ के भारत छोड़ो आन्दोलन के दिनों में ब्रिटेन और भारत के अलग-अलग राष्ट्रीय चरित्र फिर तेजी से फोकस में आए। चरित्र के नियमों को समझकर सचमुच हम दोनों से सहानुभूति जता सकते हैं। इंग्लैण्ड ऐसा देश था जो कमजोर देश की नैतिक पुकार को सुनकर मैदान छोड़ना कायरता और कच्चे मन का काम समझता था। अगर विश्व का सबसे शक्तिशाली देश करुण आर्तनादों को सुनकर अपना सिंहासन दान में देने लगे, फिर तो राज चल चुका। दूसरी ओर भारत ऐसा देश था जो हिंसा की शक्तिशाली भाषा में बातचीत ही नहीं करता था; उसका आर्तनाद प्रतिहिंसा में बदलता ही नहीं था। लेकिन दोनों एक दूसरे का दबदबा मानते थे। भारत

का आर्तनाद सचमुच ब्रिटेन के मन को कच्चा बना रहा था और ब्रिटेन की सैनिक अपराजेयता का भारत को अंधविश्वास था। गाँधी बार-बार कहते थे कि युद्ध में कितना ही दुश्मन ताकतवर हो, लेकिन अंग्रेजों का साहस टूटेगा नहीं। गाँधी ब्रिटेन के चरित्र से परिचित भी थे। एक बार उन्होंने इस आशय का लेख लिखा भी कि अंग्रेज एक गर्वीली कौम है। भारत जैसे गुलाम देश से सहानुभूति की जरूरत पड़े, इसमें वह अपनी हेठी समझती है। जापान से हार जाना तो वह मंजूर कर लेगी, लेकिन भारत के सामने नाक नीची करना उसे नागवार है। जो मदद वे भारत में आज्ञा देकर ले सकते हैं, उसके लिए उन्हें स्वाधीन हिन्दुस्तान के सामने झोली फैलानी पड़े, यह उनके लिए पराजय से भी बदतर होगा। इसीलिए वे डूबती हुई नाव में भी अपने नौकर को बाँधे हुए हैं। ब्रिटेन के इस चरित्र को समझते हुए ही गाँधीजी ने युद्ध के आरम्भिक वर्षों में कहा था कि अगर स्वाधीनता आज नहीं मिल सकती, तो हम युद्ध की समाप्ति तक इन्तजार कर लेंगे। लेकिन आखिर भारत का भी तो एक चरित्र है। जब १९४२ का संकट आया, तो गाँधी ने अंग्रेजों से कहा कि तुम भारत छोड़ो और दिगन्त को कँपाने वाली ऐसी विजय प्राप्त करो, जो जर्मनी और जापान को रौंदने वाली सैनिक विजय से सौ गुना अधिक चमकीली है। भारत के आर्तनाद को सुनकर साम्राज्य अगर सन्यासी बन जाए, तो इसके परिणाम इतने क्रान्तिकारी होंगे, जितने दो महायुद्धों के नहीं हुए। गाँधी चाहते थे कि एक पूरा का पूरा साम्राज्य गौतम बुद्ध बन जाए और निर्णय के क्षण में अपना ठाट-बाट छोड़ दे। लेकिन ऐसा त्याग ब्रिटेन के चरित्र में ही नहीं था। फिर जापान से आतंकित होकर ब्रिटेन भारत को स्वाधीनता देता, तो उस पर यह आरोप भी लगाया जाता कि जिस मकान पर कुर्की आ गई है, उसका वह दान कर रहा है। अशोकवाटिका खतरे में है, इसलिए सीता पुनः राम को लौटाई जा रही है, ताकि लंका के राजा को कमजोरी के बावजूद कलंक न लगे और मुफ्त का पुण्य हाथ लग जाए। गाँधी का दृष्टिकोण

था कि एशिया और अफ्रीका का जो शोषण अंग्रेजों ने किया है, उस पाप का दण्ड देने के लिए योरप में नाजीवाद का उदय हुआ है। उनकी शब्दावलि धार्मिक थी, लेकिन धर्म-निरपेक्ष नेहरू की भी थीसिस अन्ततः यही थी कि वंचित साम्राज्यवाद का नाम हिटलर पड़ गया है। दोनों सोचते थे कि इंग्लैण्ड अपना राज छोड़कर पाप का प्रायश्चित करे, तो जर्मनी और जापान की विकृतियों का भी शमन हो जाएगा।

लेकिन अंग्रेज कौम अपने को कुटिल, खल, कामी और पतितों का टीका मानने वाली कौम नहीं है। लगे हाथ उन्हें दुनिया में एक साम्राज्य मिल गया था, और यह साम्राज्य उनके मनोविज्ञान का हिस्सा बन गया था। शोषण भले ही इंग्लैण्ड ने कितना ही किया हो, लेकिन अंग्रेजों को यह विश्वास हो चुका था कि वे पृथ्वी से दो फुट ऊपर चलने वाले देवता हैं, और काले पिछड़े लोगों को सभ्य बनाने का मिशन लेकर वे दुनिया में पैदा हुए हैं। कोई कचोटने वाली अपराध-भावना उनके मन में नहीं थी, जिसके कारण वे लगातार शर्मिन्दा होते रहें। गाँधी ने अंग्रेजों की शर्म को जागृत करने के प्रयत्न अवश्य किए, और वह किंचित जगी भी। लेकिन युद्ध की घड़ी ऐसी होती है, जब सारे अपराध भाव, सारे हीन भाव सपनों की तरह उड़ जाते हैं। कोई भी सिपाही अपने राष्ट्र की करतूतों के प्रति शर्मिन्दगी का भाव लेकर मैदान में जाए, तो वह क्या खाक दुश्मन से लड़ेगा? अतः जब द्वितीय महायुद्ध शुरू हुआ, तो यह स्वाभाविक था कि ब्रिटेन का साम्राज्य गर्व और भी प्रबल हो उठा, और भारत को अपनी सहज और नैसर्गिक सम्पत्ति समझ कर उसने सारे कदम उठाए। वाइसराय ने युद्ध घोषणा करने के पहले किसी भारतीय से सलाह नहीं ली। वह क्यों लेता? १९०९ से १९३५ तक हुए सारे सुधार महायुद्ध ने पृष्ठभूमि में धकेल दिए, और लॉर्ड लिनलिथगो लॉर्ड कर्जन की तरह भारत के एकछत्र एवं निर्विवाद शासक बन गए। कठपुतलियों का तमाशा बक्सों में रख दिया गया, और असली

अभिनेता मंच पर आ गए। जैसे ढोल कर्कश होते गए, जैसे-जैसे युद्ध की पशु-गर्मी बढ़ती गई, वैसे-वैसे इंग्लैण्ड एक उन्मत्त और हिंस्र जानवर बनता गया, जो गजब के संयम और गरिमा और साहस के साथ युद्ध संचालित कर रहा था। भारत के दृष्टिकोण से १९४२ में साम्राज्य-भंग इष्ट और अनिवार्य था। इंग्लैण्ड की दृष्टि से १९४२ में साम्राज्य भंग असंभव - अक्षरशः असंभव था। गाँधी माँग कर रहे थे कि महाभारत के मैदान में खड़ा हुआ अर्जुन एकाएक कलिंग के बाद वाला अशोक बन जाए। भारत के नियमों के अनुसार गाँधी की माँग अपरिहार्य थी। इंग्लैण्ड के चरित्र के अनुसार इस माँग का ठुकराया जाना अपरिहार्य था। शिकार की घड़ी में कोई चीता अहिंसक नहीं हो सकता, भले ही आप उसे कितना ही समझाइए कि उसे गोली लग सकती है। अगर वह अहिंसक हो जाए, तो चीते की गरिमा में अवश्य कुछ बट्टा लगता है। गाँधी भारत और इंग्लैण्ड की इस चारित्रिक टकराहट को बखूबी समझते थे, लेकिन वे बेबस थे। जापान जब भारत की देहली पर था, तब एक ऐसा क्षण आ गया था, जब भारत और इंग्लैण्ड दोनों स्वधर्मो निधनं श्रेयः के अनुसार अपने-अपने समुचित निधन की तैयारी कर रहे थे। इंग्लैण्ड गाँधी के नुस्खे के अनुसार इच्छा-मृत्यु के लिए तैयार नहीं था, और भारत बेचारे को इजाजत नहीं मिल रही थी कि वह इच्छा-मृत्यु का वरण करे। गाँधी और अंग्रेजों का यह युद्ध भी सचमुच विचित्र ही था। वह कुरुक्षेत्र में खड़े अर्जुन का सन्यासियों की जमात से युद्ध था, जो गाण्डीव के तीरों से मरने के लिए तैयार खड़ी थी, और अर्जुन के वीरता मूल्यों को पराजित कर रही थी। जब गाँधी इंग्लैण्ड से कह रहे थे कि वह युद्ध की घड़ी में त्याग का निर्णय ले, तब वे इंग्लैण्ड के भारतीयकरण की माँग कर रहे थे। यदि १९४२ में सचमुच इंग्लैण्ड का भारतीयकरण हो जाता तो क्या होता, यह सचमुच बेहद दिलचस्प अनुमान का विषय है।

१६३६-४१ में जो देश शुद्ध अहिंसक आन्दोलन के लिए तैयार नहीं था, वह १६४२ में तैयार कैसे मान लिया गया ? क्या कांग्रेसवालों का नैतिक स्तर इन ढाई वर्षों में ऊँचा हो गया ? क्या खादी घर घर में पहुँच गई थी ? लेकिन १६४२ में ऐसी नौवत आ पहुँची थी कि अहिंसा की अधकचरी सेना को ही युद्ध में झोंकना जरूरी था । गाँधी लिखते हैं कि अहिंसा की ट्रेनिंग पूरी होने के लिए कयामत के दिन तक तो इन्तजार नहीं किया जा सकता । युद्ध खत्म हो जाने के वाद अगर सेना तैयार हो, तो फायदा क्या ? इसलिए हिंसा की जोखिम उठा कर भी आंदोलन करना होगा । इस मौके पर उन्हें लगा कि निष्क्रियता के खतरे हिंसा के खतरों से ज्यादा बड़े हैं । और जव कोई भी सेनापति युद्ध शुरू करता है, तव अतिरेक के लिए और अप्रत्याशित मोड़ों के लिए तो तैयार रहता ही है । गाँधी भी इस वार अतिरेक के लिए तैयार थे । वे कहते थे कि एक निहत्था देश आखिर हिंसक वन कर भी कितनी हिंसा कर लेगा ? अगर महायुद्ध के आरम्भिक दिनों में गाँधी दुखी थे (हरिजन : १० अक्टूवर १६३६) कि अहिंसा के उसूल में किसी की आस्था नहीं है, और सब उसे एक पैंतरा समझते हैं, तो अव गाँधी कहने लगे कि मुझे अपने आन्दोलन के लिए अहिंसा के सिद्धांत में अटूट विश्वास रखने वाले सिपाही नहीं चाहिए । अगर यही कसौटी रखी तो हो सकता है कि मेरे अलावा कोई आदमी ही देश में न मिले । मैं तो सिर्फ ऐसे लोग चाहता हूँ कि जो अहिंसक आंदोलन के प्रोग्राम को नियमपूर्वक अमल में लाएँ । जिस प्रकार हिंसक लड़ाई के कारणों को अधूरा या गलत समझते हुए भी सिपाही रणक्षेत्र में अपनी जान दे देते हैं, उसी तरह अहिंसा को अधूरा या गलत समझने वाले सिपाही भी गाँधी को स्वीकार्य थे । १२ अप्रैल १६४२ के हरिजन में गाँधी ने लिख दिया कि भारत यदि अहिंसा को एक अवसरवादी पैंतरे के रूप में अपनाना चाहता है, तो यह भी उन्हें स्वीकार है ।

स्वाधीन भारत को जापान से हिंसक युद्ध करना पड़ सकता है,

यह भी गाँधी ने स्वीकार कर लिया। अंग्रेजों से उन्होंने कहा कि आप लोग सिर्फ हुकूमत छोड़ दीजिए, और पूरे फौज फाटे के साथ हिन्दुस्तान में बने रहिए। पहले वे कहते थे कि जिन तरीकों से हम ब्रिटिश साम्राज्य को बाहर निकाल रहे हैं, उन तरीकों से जापान को घर के बाहर क्यों नहीं करते। लेकिन अब वे कहने लगे (हरिजन, ५ जुलाई १९४२) कि जो चीज घर के पुराने मालिक पर असर डालने के लिये काफी थी, वह हो सकता है नये हमलावर को दूर रखने में कारगर न हो। इसलिए अहिंसा की बिना आजमाई दवा के भरोसे हम इंग्लैण्ड से यह नहीं कह सकते कि वह अपनी फौज यहाँ से लौटा जाए।

दिसम्बर १९४१ में बारडोली में जिस गाँधी ने काँग्रेस कार्यसमिति से झगड़ा कर लिया और कहा कि अगर आप लोग अहिंसा का उसूल नहीं मानते तो मैं आपका नेता नहीं, उन्हीं गाँधी ने सिर्फ तीन महीने बाद अपनी बुनियादी स्थितियाँ बदल लीं। जिस इंग्लैण्ड को गाँधी पहले आन्दोलन द्वारा तंग नहीं करना चाहते थे, उसी इंगलैण्ड के प्रशासन को भारत में ठप्प कर देने का उन्होंने आव्हान किया, क्योंकि जापानियों के भारत छोड़ो आंदोलन के सामने अंग्रेजों को झुकना पड़े, इससे बेहतर यह था कि भारतवासियों के भारत छोड़ो आन्दोलन को लन्दन वाले सफल हो जाने दें।

लेकिन १९४२ का भारत छोड़ो आंदोलन क्या शक्ल लेता, यह अब मात्र अनुमान का विषय है। अंग्रेजों ने और विश्व घटनाओं ने आंदोलन की भ्रूण हत्या कर दी। जापानी हमले के जिस अन्देशे से गाँधी के मन में "भारत छोड़ों" की बिजली कौंधी, वह हमला कभी हुआ ही नहीं। अगर जापान भारत को रौंदता हुआ आगे बढ़ता, और गाँधी जेल के बाहर होते तो, गाँधी के प्रमेयों को सिद्ध होने का मौका मिलता। तब हम देखते कि बर्बर हमलावर के खिलाफ अहिंसक असहयोग का अस्त्र कहाँ तक सफल होता है। तब हम देखते कि पराजय के कगार पर खड़ा ब्रिटेन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सत्ता सौंपता है या नहीं।

तब हम देखते कि ब्रिटिश साम्राज्य को ठप्प करने के लिए किया गया आन्दोलन कैसे भारत की जिजीविषा को सान पर चढ़ाता है, और उसे जापानियों से लड़ने का भी हथियार बनाता है। तब हम देखते कि कितने लोग हवा देख कर जापान से हाथ मिला रहे हैं। कितने गाढ़े समय में भी इंग्लैण्ड के साथ हैं, और कितने जान बचाने के लिए दलबदल कर रहे हैं। गाँधी के नुस्खे की अग्निपरीक्षा तब शुरू होती, जब युद्ध की जीतहार सिर्फ गोला बारूद और किराये के सिपाहियों पर निर्भर नहीं होती, बल्कि वह नागरिकों के संकल्प और हौसले पर निर्भर हो जाती, जैसे वह स्टालिनग्राड में या अन्यत्र हुई। दुर्भाग्य से द्वितीय महायुद्ध में वह मौका कभी आया ही नहीं, जबकि भारत के नागरिक सहयोग पर इस पार या उस पार का फैसला हो सके। जब वह मौका आता तब इंगलैण्ड को शायद महसूस होता कि डूबती हुई नाव में बँधे हुए गुलाम को बेहोशी की दवा सुँघा कर उसने कितनी हिमालयी भूल की है। गाँधी कहते हैं कि सारा भारत आज नागरिक रूप से अधमरा है—द होल ऑफ इण्डिया इज सिविली डेड—और अगर आप युद्ध जीतना चाहते हैं, तो उसे स्वाधीनता की संजीवनी दीजिए। क्या अंग्रेज हमें जहर का इंजेक्शन देकर भारत से भागते ? क्या गाँधी मौत के रास्ते से भारत को जिला देते ? क्या १९४२ के आन्दोलन में ऐसा कोई रसायन होता जिसके कारण भारत को उगलना इंगलैण्ड के लिए अनिवार्य और भारत को निगलना जापान के लिए असंभव हो जाता? इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है। गाँधी के जीवन का सबसे अनूठा, और स्तब्ध कर देने वाला आन्दोलन वह है, जो शुरू ही नहीं हो सका। जैसे सुने हुए संगीत से अनसुना संगीत अधिक दिव्य और मीठा होता है, वैसे ही हो चुके आन्दोलन से अनहुआ आन्दोलन कहीं अधिक विचित्र और हजारों संभावनाओं से भरा लगता है।

९ अगस्त १९४२ को जब लार्ड लिनलिथगो की सरकार ने गाँधीजी को और काँग्रेस की समूची कार्यसमिति को गिरफ्तार किया तब उन्होंने

सांटा मेरिया जहाज पर छापा मार कर मानो अमेरिका के लिये रवाना हो रहे क्रिस्टोफर कोलम्बस को गिरफ्तार कर लिया। नैतिक प्रयोग का एक पूरा का पूरा महाद्वीप अनखोजा ही रह गया। हिटलर ३ सितम्बर १९३९ को गिरफ्तार कर लिया जाता, तो द्वितीय महायुद्ध एक अजन्मे बीज की तरह भविष्य के गर्भ में पड़ा रहता, और मर जाता। गाँधी का गिरफ्तारी के कारण १९४२ का आन्दोलन भी एक अजन्मे बीज की तरह भारत के इतिहास में कहीं पड़ा है।

लेकिन जो हुआ और जो नहीं हुआ, उसने कुल मिला कर ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिला दीं। गिरफ्तार तूफान की तरह निष्क्रिय आगा खाँ महल में बैठा हुआ गाँधी; क्रोध से पागल, हिंसा पर उतारू भारत की जनता; थपेड़े मारता हुआ जापान; सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज; इन सबने एकत्रित रूप से ब्रिटेन को विश्वास दिला दिया कि भारत को ज्यादा दिन गुलाम रखना संभव नहीं है। जापान को हराने के बाद जब उसका जंगी नशा टूटा, युद्ध की तांत्रिक विकृतियों को त्याग कर जब वह होश में आया, तब उसने पाया कि जिस साम्राज्य-गर्व के बूते पर उसने महायुद्ध लड़ा था, वह व्यर्थ और खोखला था। महायुद्ध के सन्निपात क्षणों में जो सचाई ब्रिटेन मंजूर नहीं कर सकता था, वह उसके अवचेतन में धँस गई थी, और युद्ध समाप्त होते ही वह सतह पर आ गई। बिना छाती पीटे, बिना बाल नोचे, बिना प्रायश्चित-प्रदर्शन के, इंगलैण्ड ने बड़े कामकाजी ढंग से यह फैसला किया कि वह ३० जून १९४८ तक भारत छोड़ देगा; और यह विडम्बना ही है कि जिस इंगलैण्ड से १९४२ में कहा जाता था कि वह भारत को अराजकता के भरोसे छोड़ दे, उसके वाइसराय लार्ड माउण्टबैटन पर आजकल यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने बड़ी जल्दबाजी में भारत छोड़ दिया, और उसे गृहयुद्ध व अराजकता के भरोसे छोड़ दिया।

तो १९४२ में देश ने एक नये गाँधी की झलक देखी। झलक मात्र, क्योंकि अपने अहिंसक राग के पूरे विस्तार के पहले ही वे आगा खाँ

महल पहुँच गए । १६१६ से अब तक गाँधी की यह विशेषता रही कि भारत के असन्तोष को व्यक्त करने के लिए उन्होंने शुद्धतः भारतीय तरीके खोजे । असन्तोष को खूनखच्चर और क्रांतिवाद के रास्ते से मोड़ कर उन्होंनें उसका अहिंसक उन्नयन किया । यही काम गाँधी १६४२ में भी करने जा रहे थे । (विरोधी कहते हैं कि इस प्रकार भारत के असन्तोष को उन्होने प्रभावहीन बना दिया, और उसकी पूरी मार से अंग्रेजों को और भारत के शोषकवर्ग को बचाया । वे एक आग तैयार करते, और जब वह भड़क जाती तो उसे लेकर अंग्रेजों से वार्ता करने जाते और कहते कि समझौता करो, वर्ना तुम झुलस जाओगे । इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य नरम नरम झुलसता भी रहा, और नरम नरम बेमतलब रिआयतें भी देता रहा । कोई मरणान्त मुठभेड़ हुई नहीं ।) १६४२ में भारत का असन्तोष सहस्त्रगुना उग्र होकर अनेक क्रांतिकारी धाराओं में वह रहा था । अगर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कुछ न करती, तो नेतृत्व शायद उसके हाथ से निकल जाता । अतः निष्क्रियता के खतरों को हिंसा के खतरों से उसे तौलना था । गाँधी के लिए पुनः एक महान् उन्नयन का क्षण आ पहुँचा था, जब देश के बिखरे-बिखरे विकेन्द्रित असन्तोष को जीपुंभूत करके वे एक महान् आन्दोलन का रूप देना चाहते थे ।

लेकिन बम्बई के महासमिति अधिवेशन में गाँधी ने शंख फूंका ही था कि अंग्रेजों ने उन्हें रणक्षेत्र से हटा दिया, और आगा खाँ महल में बन्द कर दिया । नेपोलियन को उन्होंने सेंट हेलेना भेज दिया । ऐसा करना भारत में उनके बायें हाथ का खेल था । लेकिन जेल जाकर गाँधी कभी पराजित न हुए । फिर भी शायद एक तीव्र कुण्ठा-बोध तो उनके मन में रहा ही होगा कि द्वन्द्वों की कर्मठ घड़ी में वे बेबस हैं, और कारावास में हैं । हिंसक युद्ध की पशु गर्मी में और अहिंसक आंदोलन के सात्विक आवेश में पता नहीं कितना फर्क होता है, लेकिन यह असन्दिग्ध है कि आवेश और गर्मी के इस क्षण में अपने शिकार से, लक्ष्य से, कार्यक्रम से

वंचित कर दिया जाना बहुत ही पागल वना सकता है। भारत की जनता को उसने पागल बनाया भी, और गाँधी भी उससे किंचित प्रभावित हुए ही होंगे। ९ अगस्त १९४२ को कांग्रेस के समस्त वड़े नेताओं की गिरफ्तारी दरअसल क्रौंच वध की राजनैतिक गाथा है। इस क्रौंच वध की करुणा का वहेलिया पर इतना असर पड़ा कि पाँच साल वाद उसने राज छोड़ दिया।

महादेव नहीं रहे

एकाकीपन का इतिहास लिखना सचमुच कठिन है। ध्यान-मग्न योगी की क्या जीवनी हो सकती है? गौतम बुद्ध की तपस्या के छः वर्षों की क्या कहानी है? गौतम बुद्ध को कोई सुशीला नैयर नहीं मिलीं, वर्ना हम उनके दिन-प्रति-दिन का विवरण जान पाते। अघटना का लेखा जोखा सचमुच मुश्किल चीज है, हालाँकि अधिकांश मानवता अघटना में ही जीती है।

यह सही है कि आगा खाँ महल में महात्मा गाँधी बेहद व्यस्त रहते थे, घड़ी की तरह व्यस्त। समय की वरबादी को वे हिंसा मानते थे, इसलिए नज़रबन्दी के एक-एक दिन का उन्होंने पूरा-पूरा उपयोग किया। सार्वजनिक कर्म से वे वंचित थे, लेकिन व्यक्तिगत कर्म की उन्हें लगभग पूरी आजादी थी, और गाँधीजी के लिए रोज-मर्रा के कामकाज कभी कम महत्वपूर्ण नहीं रहे। प्रार्थना, भजन, कताई, पत्र व्यवहार, पुस्तक लेखन, उर्दू सीखना, रामायण-सम्पादन, वाइबल-अध्यापन, घूमना, भोजन की एक-एक केलरी का हिसाब रखना, मालिश, स्नान, मौन आदि में उनके चौबीस घंटे गुजर जाते। गाँधी घड़ी की तरह व्यस्त और नियमित थे। लेकिन क्या घड़ी की व्यस्तता का वर्णन किया जा सकता है? समय के फल का पूरा रस गाँधी निचोड़ते थे। लेकिन आगा खाँ महल में वर्ष के पेड़ पर दिन रात के जो फल लगे थे, उनमें रस की मात्रा अपेक्षया कम थी, और

गाँधी तथा उनके सहयोगियों को प्रयत्नपूर्वक अर्क की अन्तिम बूँदें निचोड़नी होती थीं।

चार घटनाएँ ऐसी हुईं, जिन्होंने आगा खाँ महल के समय-शून्य को विशिष्ट रंग दिया। पहली घटना तो गाँधीजी की गिरफ्तारी की ही थी। युद्ध के क्षण जब सेनापति को गिरफ्तार किया गया, तो देश को ऐसा विवशता-बोध हुआ, ऐसी पागल खीझ उपजी, जैसी वर्षों से नहीं उपजी थी। निहाई जब गर्म थी और उस पर हथौड़ा पड़नेवाला था, तब उस पर ठण्डा पानी डाल दिया गया और वह तड़क गई। इस कुण्ठा का गाँधी पर क्या असर हुआ, यह कहना कठिन है। लेकिन महादेव देसाई को आभास हुआ कि बापू उपवास करेंगे। शायद वे आमरण अनशन करें। "करो या मरो" का उन्होंने नारा दिया था, और जेलयात्रा को बहुत छोटी कुर्बानी माना था, इससे शायद महादेव देसाई को लगा हो कि गाँधी अन्तिम आहुति के लिए अपने आपको तैयार कर रहे हैं। कच्चे धागे से बँधी एक तलवार महादेवभाई के सिर पर लटकने लगी, जिसने उनका खाना, पीना, सोना सब कुछ हराम कर दिया। बापू की संभावित चिता पर महादेव देसाई पहले से ही जलने लगे और उनका उद्वेग इतना विकराल सिद्ध हुआ कि आगाखाँ महल में पहुँचने के सातवें दिन उनका प्राणान्त हो गया।

यह दूसरी घटना है जो आगाखाँ महल पर पूरे पौने दो साल तक छाई रही। महल के बन्दियों ने इतनी नियमितता से महादेव देसाई की समाधि के दर्शन किए, उसे सजाया, उस पर फूल चढ़ाए, कि आगाखाँ महल सचमुच समाधि का शेषांश, उसका एनेक्स बन गया। हुतात्मा के साथ जीने का बोध पूरे समय सब पर हावी रहा। वह समाधि सिर्फ महादेव देसाई की नहीं, १९४२ के अनारम्भित सत्याग्रह की भी समाधि थी। "करो या मरो" की वेदी पर गाँधी की ओर से एक कुर्बानी पहुँच चुकी थी, और सचमुच गाँधी का ही एक अंश महादेवभाई के साथ समाप्त हो गया था।

सत्याग्रह ठप्प कर दिया गया, इस बात पर गाँधी निराश नहीं हो सकते थे, क्योंकि सत्य कभी ठप्प किया नहीं जा सकता, और ७३ साल की उम्र में भी गाँधी के पास सत्याग्रही का अपार धैर्य था। अहिंसा का सबसे नया प्रयोग उन्हें नहीं करने दिया गया, इस कारण भी वे निराश नहीं हो सकते थे, क्योंकि अंग्रेजों के लिहाज़ से यह सहज था कि जिस शस्त्रागार में उन्हें समाप्त करनेवाला मारक अस्त्र बनाया जा रहा हो, उसे वे नष्टभ्रष्ट कर दें। लेकिन अहिंसा का अस्त्र अगर सच्चा है, तो वह अस्त्रागार के नष्ट होने से नष्ट नहीं होगा। फिर जेल में पहुँचते ही गाँधी बाहरी विश्व से अपने को सायास काट लेते थे, और लगभग निश्चिन्त होकर जेल में एक नया जीवनक्रम शुरू कर देते थे।

इन सब कारणों से १९४२ के दुखान्त की कोई प्रकट प्रतिक्रिया गाँधी पर नहीं हुई। लेकिन महादेव देसाई की मृत्यु ने मानों एक सेंध, एक नहर बना दी जिसके रास्ते १९४२ का राजनैतिक विषाद भी बहने लगा। महादेव एक प्रतीक बन गए, और सार्वजनिक कुण्ठाओं का आगा खाँ महल के निवासियों ने मानवीकरण कर दिया। महादेव देसाई की मृत्यु से संभवतः गाँधी का प्रस्तावित अनशन भी टल गया। गाँधी ने मानों एक घातक रक्तदान किया, जिसके कारण वे श्लथ पड़ गए, और तत्काल आहुति का कोई विचार उनके मन में रहा हो, तो वह उन्होंने त्याग दिया। महादेव-भाई ने खुद प्राण देकर हो सकता है गाँधी की जान बचाई हो, क्योंकि गाँधी उन दिनों यदि आमरण अनशन करते, तो सरकार हर दुर्घटना के लिए तैयार बैठी थी।

किन्तु महात्मा गाँधी को १९४२ के प्रति अपना अलग ऋण भी चुकाना था। फरवरी १९४३ में उन्होंने इक्कीस दिन का एक अनशन शुरू किया, क्योंकि लार्ड लिनलिथगो ने १९४२ की सारी हिंसा के लिए कांग्रेस को और गाँधीजी को दोषी ठहराया था।

(यह उनकी नज़रबन्दी की तीसरी बड़ी घटना थी।) गाँधीजी की स्थिति इन आरोपों के बाद और भी विवश हो गई। जो अहिंसक युद्ध वे चलाना चाहते थे, वह शुरू भी नहीं हो पाया था कि वे गिरफ्तार हो गए। लेकिन सेनापति की अनुपस्थिति से विक्षिप्त एवं क्रुद्ध सिपाहियों ने जो भी किया, उसकी जिम्मेदारी गाँधी पर उँडेली गई, और उनसे उम्मीद की गई कि वे अपनी फौज के बर्ताव की निन्दा करें, और समूचा युद्ध वापस ले लें। इस झूठ से गाँधी तिलमिला गए। जेल में ठूँस कर अँग्रेज़ उन पर हिंसक बदले का आरोप लगा रहे थे, और गाँधी को न तो जवाब देने की छूट न थी, न घटनाओं को प्रभावित करने की। कर्मठता की घड़ी में वे जबरन निष्क्रिय थे, और इस निष्क्रियता से ऊपर उठने का उनके पास एक ही मार्ग था; उपवास। गाँधी ने अपने इक्कीस दिन के उपवास द्वारा उस निष्क्रियता की क्षतिपूर्ति की जो उन पर पूना में थोपी गई थी।

महादेव की मृत्यु और अपने उपवास के बाद गाँधी तैयार थे कि आगा खाँ महल में सात साल भी रहना पड़े तो रहें। लेकिन साल भर बाद उन्हें एक और सदमा लगा। दिसम्बर १९४३ में कस्तूरबा की तबीयत खराब हुई, जो बिगड़ती ही चली गई। ढाई महीने बाद वे चल बसीं। बासठ साल से गड़े हुए काँटे की तरह कस्तूरबा जब निकलीं, तब वे गाँधीजी के हृदय में एक गहरा घाव छोड़ गईं। महादेव देसाई की समाधि के पास एक और समाधि बन गई।

इस प्रकार आगा खाँ महल से जो गाँधी रिहा हुए, उनके शरीर पर घावों के कई निशान थे। इन घावों से उनकी गरिमा और भी अधिक दीप्त हो उठी। घावों और क्षणिक पराजयों के बावजूद अँधेरे से जूझता यह गाँधी हमें नोआखली के एकाकी गाँधी का पूर्वाभास देता है।

९ अगस्त १९४२ को बड़ी सुबह बम्बई के बिड़ला हाउस में महात्मा गाँधी गिरफ्तार हुए। सुबह चार बजे वे प्रार्थना के लिए उठे, तो महादेव देसाई ने बताया कि रात दो बजे तक टेलीफोन आते रहे कि गिरफ्तारी का सारा इन्तजाम हो गया है। गाँधीजी को इस पर विश्वास नहीं हुआ। कहने लगे "कल के मेरे भाषण के बाद तो मुझे गिरफ्तार कर ही नहीं सकते। मैं उनको इतना मूर्ख नहीं मानता।"

प्रार्थना के बाद गाँधी शौच को गए थे कि पुलिस कमिश्नर आ पहुँचे। उनके पास भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गाँधी, महादेव देसाई और मीरा बहन की गिरफ्तारी के वारण्ट थे। कमिश्नर ने कहा कि प्यारेलाल और कस्तूरबा चाहें, तो वे भी गाँधी के साथ इन्हीं शर्तों पर चल सकते हैं। वे नहीं गए, क्योंकि गाँधी का कहना था कि यों ही मत आओ; काम करते करते पकड़ लें, तो बात अलग है। पुलिस ने तैयारी के लिए आधे घंटे का समय दिया। गाँधी ने फलों के रस और बकरी के दूध का नाश्ता किया। घनश्यामदास बिड़ला से कुछ बातें हुईं। बिदा के पहले एक बार फिर प्रार्थना हुई : राम धुन, कुरान और एक गुजराती भजन तो कहता है कि हरि का भजन करते किसी की लाज गई हो, ऐसा देखा नहीं गया। गाँधीजी ने अपना कुछ सामान इकट्ठा किया : गीता, आश्रम भजनावली, उर्दू प्राइमर, धनुष तकली, पूनी का बण्डल, आदि।

चलते समय पुलिसवालों ने बिड़लाजी से बकरी का आधा सेर दूध माँगा। गाँधी ने कहा : चार आने रखवालो और दे दो।

गाँधी को कुंकुम का तिलक लगाया गया। वे लकड़ी लेकर चले, और मोटर में बैठ गए। राष्ट्र के नाम उन्होंने अन्तिम सन्देश में कहा कि हर सिपाही अपने कंधे पर "करेंगे या मरेंगे" का बिल्ला लगा ले, ताकि जो अहिंसा के युद्ध में मरें, वे अलग से पहचाने जा सकें।

तब तक छः बज चुके थे। बिड़ला हाउस के टेलीफोन रात से ही कटे पड़े थे। लेकिन वाहर भारी भीड़ जमा हो चुकी थी। मोटर चली तो सारा वम्बई जान गया कि गाँधी गिरफ्तार हो गए।

विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर एक विशेष ट्रेन तैयार थी। सुबह सुबह के झपट्टे में सारी कांग्रेस कार्यसमिति और अनेकों चोटी के नेता गिरफ्तार किए जा चुके थे। बम्बई से रेल चिंचवड़ पहुँची। नेता उतरे। मौलाना आजाद और जवाहरलाल नेहरू से उपवास की चर्चा हुई। उन्होंने कहा कि वह अन्तिम अस्त्र हो सकता है। चिंचवड़ से गाँधीजी को एक मोटर कार में बैठाया गया, और वे आगा खाँ महल पहुँचा दिये गए। शेष नेता अहमदनगर के किले में बन्दी बनाए गए।

महल में महादेव देसाई ने बापू की मालिश की, और इस दौरान वे डेढ़ घंटे सोये। वे दोपहर में भी सोये। शाम उन्होंने वाइसराय को पत्र लिखना शुरू किया, जिसमें रात हो गई। दूसरे दिन सोमवार था, और ९.२५ पर बापू ने मौन ले लिया।

१० अगस्त को महात्मा गाँधी ने बम्बई के गवर्नर सर रॉजर लमले को पत्र लिखा। इसमें उन्होंने कहा कि दूसरे साथियों को लॉरी में बैठाकर उन्हें मोटर कार की सहूलियत दी गई, यह उन्हें अपमान जनक लगा है। "आखिर जेल की गाड़ियों में मैं पहले भी बैठा हूँ।" दूसरे, मेहता नामक एक नौजवान को उनकी आँखों के सामने लकड़ी के लट्ठे की तरह उठा कर जिस ढंग से लॉरी में फेंका गया, उसकी गाँधी ने भर्त्सना की। तीसरे उन्होंने प्रार्थना की कि सारे साथियों को, और विशेषतः सरदार पटेल और उनकी पुत्री को आगा खाँ महल भेज दिया जाए, क्योंकि पिछली जेल यात्रा में सरदार को आँत की वीमारी हो गई थी, और उनकी रिहाई से अब तक वे उनके भोजन आदि की निगरानी कर रहे थे। चौथे उन्होंने सरकार से अखवारों की माँग की।

१४ अगस्त को सरकार ने ये सव प्रार्थनाएं ठुकरा दीं।

गाँधी की गिरफ्तारी के दो दिन वाद कस्तूरवा और डॉ. सुशीला नैयर दोनों आगा खाँ महल पहुँचा दी गईं। वे ९ अगस्त की शाम को होने वाली एक आम सभा में भाषण देने वाली थीं, और सभाओं को सरकार अश्रु गैस और लाठी चार्ज से तितर वितर कर रही थी। अव आगा खाँ महल में छः राजनैतिक कैदी हो गए :गाँधीजी, कस्तूरवा, महादेव देसाई, मीरा वहन, सुशीला नैयर और सरोजिनी नायडू। यह टीम सरकार ने समझदारी से चुनी थी। महादेव देसाई को राजाजी ने एक वार महात्मा गाँधी का अतिरिक्त शरीर (स्पेअर वाडी) वताया था, और महादेवभाई मालिश से लेकर वाइसरॉय को लिखे जानेवाले पत्र तक में गाँधी की सहायता कर सकते थे। वे सचमुच गाँधी के युवा अवयव थे। सुशीला नैयर के रूप में गाँधी के पास एक निजी डाक्टर मौजूद थीं, और जैसाकि वाद की घटनाओं से स्पष्ट है महल में एक २४ घंटे के डाक्टर की सचमुच जरूरत थी। सरोजिनी नायडू अपनी जिन्दादिली और विनोदप्रियता से सवको हँसाती रहतीं, और मीरा वहन गाँधी की अंग्रेज शिष्या थीं। आगा खाँ महल मानों एक लघु-आश्रम वन गया। इस आश्रम में वाद में जो सदस्य आए और अन्त तक या काफी समय तक रहे वे थे प्यारेलाल, डॉ. एम. एम. डी. गिल्डर, मनु और कनु गाँधी और प्रभावती जयप्रकाश नारायण।

आगा खाँ महल के प्रथम दर्शन का वर्णन डॉ. सुशीला नैयर यों करती हैं: "पन्द्रह वीस मिनट में मोटर एक सूनी--सी सड़क के किनारे एक वड़े फाटक पर आकर खड़ी हो गई। फाटक वन्द था। मोटर दूसरे फाटक पर गई। सामने फौजी पहरा था। फाटक खुला। हम अन्दर घुसे, पीछे फाटक वन्द हो गया। थोड़े फासले पर कंटीले तार लगे थे। वहाँ भी फाटक था और फौजी पहरा। यह दूसरा फाटक खुला और हमारे अन्दर जाने पर फिर वन्द हो गया।

दूर से मैंने देखा मीरा बहन बगीचे में फव्वारे के पास बैठी कुछ घिस रही थीं। मगर उन्होंने हमें नहीं देखा। मोटर संगमर्मर की सीढ़ियों के सामने जाकर खड़ी हो गई। बा और मैं दोनों उतरीं और ऊपर चलीं। बरामदा लम्बा था। सामने के और बगीचे के तरफ के बरामदे का शुरू का आधा फर्श संगमरमर का था, और आगे जाकर आधा मामूली पत्थर का था। एक कैदी झाड़ू लगा रहा था। उससे मैंने बापू का कमरा पूछा। वह बोला, आगे इसी लाइन में है। बापू का कमरा आया। उनका बिछौना कोच पर था।"

आगे वे लिखती हैं: "यहाँ अभी बरसात शुरू हुई है सो बरामदे में घूमना पड़ता है। मगर बरामदा बहुत लम्बा है। मकान के चारों तरफ गया है। एक चक्कर में एक तिहाई मील की घुमाई हो जाती है। मकान की निचली मंजिल में हमें रखा गया है, ऊपर हमारे जेलर मि. कटेली रहते हैं। नीचे वाला भाग भी सब नहीं खोल रखा है। एक बड़े कमरे में सरोजिनी नायडू हैं। वहीं दो संगमरमर की मेजें पड़ी हैं जहाँ सब खाना खाने बैठते हैं। एक कमरे में बापू हैं, एक में मीरा बहन। एक छोटा कमरा बापू और सरोजिनी नायडू के कमरे के बीच है, वहीं महादेवभाई, मैं, बा वगैरा कभी-कभी बैठते थे। अधिकतर तो बापू के कमरे में ही काम करते रहते थे। गुसल-खाने दो ही हैं, मगर बड़े हैं। पाखाना फ्लशवाला है। बगीचा बहुत बड़ा है, पर कंटीले तार लगाकर हमें बहुत थोड़ासा टुकड़ा दिया गया है। पानी नहीं पड़ता तब वहीं थोड़ा घूम लेते हैं।"

और भी:

"चारों ओर कँटीले तारों का अहाता खींच दिया गया है जिसमें से हमें बगीचे का थोड़ा ही हिस्सा मिला है। बाहर की दीवार से कँटीले तारों का करीब ५० या ७५ गज का फासला रखा गया है, ताकि कहीं दरवाजे में से झांक कर हम बाहरवालों के साथ सम्पर्क स्थापित न कर लें। मगर कंटीले तारों में जगह जगह इतने बड़े बड़े

रिक्त स्थान हैं कि आदमी भागना चाहे तो आसानी से भाग सकता है। इन कँटीले तारों के अन्दर छः सिपाही हमारी रखवाली के लिए रखे गए है। वे सेवा भी करते हैं। करीब एक दर्जन सजा-याफ्ता कैदी सबेरे छः वजे से शाम के छः वजे तक यहाँ सफाई इत्यादि करते हैं। करीव पन्द्रह या वीस कैदी बगीचे में काम करने आते हैं। कँटीले तारों के बाहर ७२ फौजियों का पहरा रहता है।"

महल के स्नानागारों के वारे में वे लिखती हैं:

"दोनों गुसलखानों के वीच जो दीवार है, वह छत तक नहीं गई इससे आवाज एक गुसलखाने से दूसरे में आसानी के साथ पहुँच सकती है। दाहिने हाथवाला गुसलखाना वापू इस्तेमाल करते हैं और दूसरे भी चाहें तो कर सकते हैं। इस गुसलखाने में कमोड के ऊपर बत्ती है। वापू हमेशा पाखाने के समय में पढ़ते हैं, इसलिए उन्होंने यह गुसलखाना पसन्द किया है, वर्ना यहाँ एक आदमकद आईना भी है जो वापू के काम की चीज नहीं। दूसरे गुसलखाने का इस्तेमाल सरोजिनी नायडू करती हैं, और प्रायः बा और मीरा वहन भी।"

आगाखाँ महल के कमरे वहुत वर्षों बाद शायद खोले गए थे इसलिए उनमें मक्खियों और मच्छरों की भरमार थी। मलेरिया का वह घर था। मसहरी के विना सोना मुश्किल था। गर्मी लगती, तो कुछ लोग बरामदे में बिस्तर डालकर सो जाते।

दूसरी मंजिल पर मिस्टर कटेली रहते थे, लेकिन बन्दियों को ऊपर जाने की इजाजत नहीं थी। शायद सरकार नहीं चाहती थी कि गाँधीजी की कोई झलक भी बाहरवालों को मिले। इसीलिए वरामदे के अन्त में जहाँ भवन का मुख्य पोर्च आता था, वहाँ लकड़ी की जाली वनाकर लगवा दी गई थी। महल के लिए राशन और दूसरा सामान प्रायः यरवडा जेल से आता। बन्दियों ने जो भी

त्यौहार, वर्षगाँठें और उत्सव मनाए, और बापू ने जो भी प्रयोग भोजन के किए, उसके लिए उन्हें जेलवत बाधाएँ नहीं आईं। कई मौकों पर गाँधीजी की ओर से कैदियों और सिपाहियों को मिठाई, नमकीन आदि बाँटे जाते, और सरकार उसका प्रबंध करती। सिपाहियों का जमादार रघुनाथ आवाजी सालुंके था, जो १९३२ की जेलयात्रा में भी गाँधीजी के साथ था। वह काफी होशियार और चलता पुर्जा था। आजकल वह सेवामुक्त है, और चिंचवड़ में अपनी ढलती उम्र गुजार रहा है।

तो इस प्रकार एक तिमंज़िले महल की पहली मंजिल के चार पाँच कमरों में सारे वन्दी रहते थे। एक लम्बा खम्भोंवाला बरामदा और उससे लगे हुए चार पाँच कमरे : बस यही सबका दायरा था। घूमने के लिए सामने बगीचा था। बाद में अहाते के बाहर महादेवभाई की समाधि बन गई। बरामदे के अन्त में कुछ नीचे उतरकर अलग रसोईघर था, जैसाकि राजमहलों में अक्सर होता है। दूध के लिए बकरी थी, जिसे मीरा बहन दुहती थीं। भोजन में सहायता देने के लिए भी कैदी थे, हालाँकि गाँधीजी का दल अपना काम अपने हाथ करना पसन्द करता था।

सेवा करनेवाले कैदी यरवड़ा से आते जाते थे, और दोनों वक्त उनकी तलाशी ली जाती थी। यरवडा में भी उन्हें अलग बैरक में रखा जाता था ताकि इधर की खबर उधर वे नहीं पहुँचा सकें। लेकिन भेजने योग्य खबर थी ही क्या? महादेव देसाई कैदियों से शीघ्र घुलमिल जाते थे। एक कैदी से उन्होंने बात भी कर रखी थी कि यदि बापू ने उपवास किया, और सरकार ने बाहरी दुनिया को इस बात की खबर भी न दी, तो वे उसके हाथों बम्बई समाचार पहुँचाएँगे।

१४ अगस्त को गाँधीजी ने वाइसराय को अपना पहला पत्र भेजा। उन्होंने लिखा कि दमन चक्र चलाने के पहले सरकार को

आन्दोलन की शुरूआत का तो इन्तजार करना था। मैं कह चुका था कि पहले मैं आपको चिट्ठी लिखूँगा और जल्दबाजी में कोई कदम नहीं उठाऊँगा। आपको इस मध्यान्तर का लाभ उठाना चाहिए था। गाँधीजी ने इस आरोप का भी जवाब दिया कि कांग्रेस खतरनाक तोड़फोड़ की तैयारी कर रही थी, जैसे आम हड़ताल, रेल और डाक-तार ठप्प करना, सरकारी कर्मचारियों की वफादारी समाप्त करना आदि। गाँधीजी ने कहा कि अहिंसक ढंग से ये सब कार्रवाइयाँ हो सकती थीं, लेकिन सरकार ने तोड़मोड़ कर यह बताया है कि कांग्रेस हिंसा पर उतारू थी।

गाँधीजी ने शासन के इस आरोप का जिक्र किया कि कांग्रेस भारतवर्ष की प्रवक्ता नहीं है; वह तानाशाही संस्था है जो सत्ता हड़पना चाहती है, और भारत की राष्ट्रीयता के समूचे विकास के प्रयत्नों में वह बाधा डालती है। गाँधी ने कहा कि अगर शासन को कांग्रेस पर विश्वास नहीं है तो वह मुस्लिम लीग को सरकार बनाने के लिए निमंत्रित करे, और हम विश्वास दिलाते हैं कि हम वफादारी से लीग की हुकूमत को स्वीकार करेंगे।

शासन ने कहा है कि युद्ध के बाद सभी पार्टियों की मंजूरी से भारत अपना शासन तंत्र खुद चुनेगा। लेकिन पार्टियाँ तो कुकुरमुत्ते की तरह खड़ी जाती हैं, और अगर वे कांग्रेस-विरोधी हों तो सरकार उनका स्वागत करती है, भले ही जनता उनके साथ हो या न हो। इससे क्या होगा? इसीलिए हम कहते हैं कि पहले अंग्रेज हट जाएँ, तभी भारत की पार्टियाँ एक प्रतिनिधि सरकार बना सकेंगी।

गाँधी ने लिखा कि हमारा और आपका घोषित युद्ध-ध्येय एक है। हम भी चाहते हैं कि चीन और रूस की स्वाधीनता की रक्षा हो। लेकिन आपका ख्याल है कि इस ध्येय के लिए भारत की आजादी जरूरी नहीं है। मेरा ख्याल बिलकुल उलटा है। मैंने जवाहरलाल

नेहरू को अपना नापने का गज माना है। चीन और रूस के विनाश की जितनी पीड़ा उन्हें है, उतनी मुझे नहीं हो सकती, और मैं कहूंगा कि आपको भी नहीं। नाजीवाद और फासीवाद की सफलता का उन्हें मुझसे ज्यादा डर है। मेरी स्थिति के खिलाफ वे इतने आवेश से लड़े कि मैं आपको क्या बताऊँ। लेकिन तथ्यों के तर्क ने उन्हें पराजित कर दिया। उन्हें भी लग गया कि भारत की आजादी के विना दोनों देशों की आजादी को खतरा है। सचमुच ऐसे जबर-दस्त मित्र को गिरफ्तार करके आपने गलती की है।

वाइसराय ने अपने उत्तर में लिखा कि आपकी आलोचना से हम सहमत नहीं हैं और अपनी नीति पर हम पुनर्विचार भी नहीं करेंगे।

गाँधी की गिरफ्तारी के वाद हिन्दुस्तान में एक अनियोजित विद्रोह खड़ा हो गया, जिसका अंग्रेजों ने नियोजित जुल्म से जवाव दिया। ९ अगस्त को सुवह ही वम्बई के गवालिया टैंक मैदान पर तीन वार अश्रु गैस छोड़ी गई, लाठी चार्ज किए गए, लेकिन सभा के लिए आई भीड़ फिर फिर एकत्रित हो गई। पूना और अहमदावाद में भी गड़वड़ें हुईं। १० अगस्त को दिल्ली और संयुक्त प्रान्त में आग लग गई। हड़तालों, प्रदर्शनों का ताँता लग गया। सरकार ने कानून को ताक में रखकर आर्डिनेन्स निकाल दिए। काँग्रेस कमे-टियाँ गैरकानूनी करार दी गईं। दूकान और होटलों को वन्द रखना अपराध माना गया। आन्दोलन के वारे में कोई भी खवर छपना मुश्किल हो गया। न तो जनता के विद्रोह की खबरें छप सकती थीं न शासन के जुल्म की। लखनऊ का नेशनल हेरल्ड और गाँधीजी का 'हरिजन' वन्द हो गए।

१५ अगस्त की सुवह महादेव देसाई को अचानक दिल का दौरा हुआ और वे चल वसे। १९३२ में जव महात्मा गाँधी ने छः दिन का उपवास किया था, तव महादेवभाई ने दस पौण्ड वजन खोया था,

हालाँकि उन दिनों वे नियमित भोजन करते थे। इस बार बापू के उपवास के अन्देशे मात्र ने उनके प्राण ले लिए।

उस दिन महादेवभाई सुबह साढ़े चार बजे उठे। तव तक प्रार्थना खत्म हो चुकी थी और सब लोग फिर सोने जा रहे थे। महादेव देसाई अनिद्रा के शिकार थे, इसलिए वे प्रार्थना के समय चार बजे नहीं उठ पाते थे। लेकिन आज बहुत दिनों बाद उन्हें अच्छी नींद आई थी, और वे वहुत स्वस्थ और प्रसन्न थे। छः बजे जब बापू उठे, तो महादेवभाई ने उनके लिए रस निकाल कर तैयार रखा था। फिर उन्होंने टोस्ट सेंके और चाय बनाई। बेहतरीन ढंग से टोस्ट को टेवल पर सजा दिया। फिर हजामत बनाई और टेवल पर आए। सुशीला नैयर ने स्वीकार किया कि महादेवभाई मुझसे ज्यादा अच्छे टोस्ट बनाते हैं। सरोजिनी नायडू भी नहा कर आईं तो महादेवभाई को शाबाशी देने लगीं। महादेव देसाई खुश थे। कहने लगे "समय मिले तो मैं सब कुछ कर सकता हूँ, लेकिन रोज रात को नींद अच्छी नहीं आती। सुबह देर से उठता हूँ तो समय नहीं रह जाता।"

उस दिन बापू के कमरे के पास बड़े आईने के सामने बैठ महादेव-भाई ने फुर्सत से हजामत बनाई। सरोजिनी नायडू बोली, "आज जब मैं नहाने गई, मैंने महादेव को बड़े आईने के सामने देखा। वे हजामत बना रहे थे, अपनी मूछों को छांट रहे थे, और नाखून काट रहे थे। मैंने मन ही मन सोचा, अरे आज महादेव को यह हो क्या गया है? अचानक उनको आज इस प्रकार सजने की कहाँ से सूझी?"

फिर गांधीजी के साथ महादेवभाई घूमने गए, और उत्साह से इधर उधर की बातें करते रहे। उस दिन जेल के इंस्पेक्टर जनरल भंडारी पहली बार आने वाले थे, इसलिए बगीचे की कस कर सफाई हो रही थी।

घूमने के बाद सुशीला नैय्यर बापू की मालिश करने चली गईं। कुछ देर बाद भंडारी आ गए। सरोजिनी नायडू के कमरे में आकर

वे कुर्सी पर बैठे। श्रीमती नायडू भी बैठी थीं। महादेवभाई खड़े थे। मजाक चल रहा था, और सब खूब हँस रहे थे। एकाएक महादेव देसाई ने कहा, मुझे चक्कर आते हैं। कमरे में पड़े पलंग पर वे लेट गए। भंडारी ने नब्ज देखी तो वह तेज और कमजोर थी। वे खुद ऊपर टेलीफोन से सिविल सर्जन को बुलाने गए, और सरोजिनी नायडू से कहा कि डॉ. नैयर को बुलवाएँ।

एक पैर की मालिश खत्म हुई थी कि सरोजिनी नायडू ने पुकारा, "सुशीला, यहाँ आओ।" पीछे ही वा हाँफती आई और कहने लगीं कि महादेव को कुछ हो गया है। उन्हें फिट आ गया है। मिरगी सी दिखती है।

महादेव भाई के चेहरे पर ऐंठन थी और नाड़ी गायव। ओठों पर झाग से थे। हाथ पैर ठंडे होने लगे थे। एकाएक उन्हें सिर से पैर तक जोर का एक झटका लगा। दवा कोई थी नहीं। सरोजिनी नायडू ने ओ द कलोन और शहद देकर कहा कि यह ब्राण्डी का काम करता है। वह मिश्रण मुंह में डाल दिया गया। महादेवभाई निगल गए। डॉ. नैयर की दवाओं की पेटी खुल नहीं रही थी। कटेली ने ताला तोड़ा तो उसमें सिर्फ केल्शियम ग्लूकोनेट का इंजेक्शन निकला। वही दिया। भंडारी ब्राण्डी की बोतल लेकर आए, शायद अपने घर से। वह भी दी गई। मरीज को तब उलटी होने लगी, और उसके वाहर निकलने में कठिनाई हो रही थी। खतरा था कि हवा की नली में उलटी का हिस्सा न चला जाए। सो उनका सिर एक तरफ कर दिया गया।

गाँधीजी भी डॉ. नैयर के तत्काल बाद आ गए थे। वे मालिश के समय कुछ पढ़ रहे थे। समझे कि भंडारी से मिलने के लिए सुशीला को बुलाते होंगे। बाद में खुद उन्हें बुलाया गया तो भी वे समझे कि चक्कर वक्कर आ गए होंगे। कमरे में आकर कभी वे महादेव का हाथ पकड़ते, कभी सिर पर हाथ रखते उनकी आँखों की तरफ टकटकी लगा कर वे देख रहे थे। अपनी सारी शक्ति को एकाग्र करके वे इस

बात में लगा रहे थे कि महादेव एक बार आँख खोल दें। बाद में बोले, "मुझे विश्वास था कि एक बार भी महादेव मेरी ओर देख लेगा, तो उठ कर खड़ा हो जाएगा।" एक बार आँख जरा खुली भी, लेकिन वह पथराई थी और देख नहीं रही थी।

उलटी के साथ वे कराहने लगे। साँस रुकने लगी। कँपकपी भी थी। चेहरा टेढ़ा हो गया। फिर एक जोर का झटका लगा और जबड़ा ऐसे भिड़ा मानो वह टूट जाएगा। फिर वे ढीले हुए। शरीर काला पड़ने लगा। डॉ. नैयर ने कहा, "बापू ,ये तो जा रहे हैं।"

महादेव भाई पसीने से भीगने लगे। इंजेक्शनों का कोई असर नहीं हुआ। सिविल सर्जन के आने तक वे जा चुके थे। स्टोक्स एडम्स सिंड्रोम नामक हृदय रोग ने उनके प्राण ले लिये। डॉ० नैयर अफसोस करती रहीं कि अगर हृदय में (इंट्राकार्डिएक) इंजेक्शन द्वारा एड्रेनलीन दे दी होती, तो शायद ये बच जाते। लेकिन गाँधीजी ने कहा कि दवा होती तो भी मैं देने नहीं देता। जितना करने दिया, उसी का मुझे अफसोस है। "ब्राण्डी देते समय ही मैं तो तेरा हाथ पकड़ लेना चाहता था, मगर फिर रहने दिया।"

कस्तूरबा फूट फूट कर रोने लगी। कमरे में वैष्णव जन और रामधुन हुई। गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ हुआ। फिर महादेव-भाई के शव को स्नानागार में पहुँचाया गया। सुशीला नैयर ने पानी डाला और बापू ने तौलिये से रगड़ कर एक एक अंग साफ किया। पैर काले से हो रहे थे, उन्हें पूरा साफ किया। उलट कर पीठ साफ की। जेल की चादरों से उन्हें ढका गया। मीराबहन ने चन्दन का लेप लगाया। कैदी फूलों की जाली बनाने लगे। फिर गीतापाठ हुआ।

गाँधीजी ने वल्लभभाई पटेल और बालासाहब खेर को यरवडा से बुलवाया था ताकि सलाह करें कि शव किसे दिया जाए। लेकिन भंडारी जब लौटे तो उनका चेहरा सूखा हुआ था। सरकार ने एक

लारी में ब्राह्मण भेजा था, और कुछ पुलिस वाले। आदेश था कि भंडारी खुद जाकर घाट पर महादेव देसाई को जला आएँ। यह दिल्ली का हुक्म था।

गाँधीजी ने शव देने से इंकार कर दिया। कहा, "मैं लाश को आपके सुपुर्द कैसे करूँ? क्या कोई पिता अपने पुत्र की लाश अजनबी आदमियों के हाथ सौंप सकता है?" बापू ने पूछा कि लाश को क्या मैं अपने सामने यहीं जला सकता हूँ?

आगा खाँ महल पर तनाव छा गया। गाँधी सोचने लगे: हत्यारों की लाश भी फाँसी के बाद रिश्तेदारों को सार्वजनिक दाह के लिए दे दी जाती है। श्रद्धानन्दजी के कातिल की लाश जनता को दे दी गई, और लोगों ने उसका जुलूस निकाला, हालाँकि तब हिन्दू मुस्लिम दंगा हो सकता था। लेकिन एक अहिंसक सत्याग्रही का शव देने के लिए सरकार तैयार नहीं है। वे सोचने लगे कि अड़ जाएँ या कड़ुवा घूँट पीकर रह जाएँ? लेकिन अन्ततः उन्होंने फैसला किया कि पिता अपने पुत्र की मृत्यु का राजनैतिक उपयोग नहीं कर सकता।

लाश को महल के पास जलाने की इजाजत आखिर बड़ी मुश्किल से मिल गई।

काँटेदार तारों के बाहर घास के खेत में जगह चुनी गई। अर्थी तैयार हुई। शव के पास पूरी गीता पढ़ी गई। पाँच ब्राह्मण संस्कार के लिए उपस्थित थे। मिल की शाल शव पर डाली गई। (बापू ने कहा: बस चलने दो।) अर्थी नीचे आई। गाँधी आग की हँडिया उठा कर चले। चिता बनी। बापू ने अग्नि दी। तीन घंटे बाद वे महल में लौटे।

शाम को लौट कर सब ने खाना खाया। घूमने गए। प्रार्थना हुई। दोपहर को बापू ने एक तार मृत्यु के बारे में लिखा और कहा कि बिना काट छाँट भेज सकें तो ही भेजें। तीन हफ्ते के विलम्ब से वह तार मामूली डाक से प्रेषित किया गया।

१७ अगस्त को जब दूसरा मौन दिवस आया तो गाँधीजी ने लिखा मैं उपवास के बारे में नहीं सोच रहा। न यह सोच रहा हूँ कि बाहर क्या हो रहा है। मैं तो अपने यहाँ के काम और अभ्यास वगैरा का ही विचार कर रहा हूँ।

सुबह शाम सभी बन्दी समाधि की तीर्थयात्रा पर जाने लगे। हर सुबह गीता के बारहवें अध्याय का वहाँ पाठ होता। नहाने के बाद बापू महादेवभाई की राख का टीका लगाते। समाधि पर चबूतरा बना दिया गया, और उसके चारों ओर पत्थर रख दिए गए। अब आगा खाँ महल में चार महिलाएँ थीं, और अकेले महात्मा गाँधी थे।

अगस्त-विद्रोह धुआँधार चलता रहा। महादेव देसाई की मृत्यु से भीषण अफवाहें फैलने लगीं। सरकारी बयानों के अनुसार २५० रेलवे स्टेशन नष्ट हुए, और ५०० डाकखानों पर हमले किए गये। १५० पुलिस थाने चपेट में आए। तार चिट्ठियों से ज्यादा विलम्बित होने लगे। यू.पी. और बिहार की संचार व्यवस्था ऐसी नष्ट हुई कि फील्ड मार्शल वैवल के लिये बर्मा से संपर्क रखना असंभव सा हो गया। अगस्त से नवम्बर तक सरकार ने पुलिस गोलीबार से ९०० मौतें स्वीकार कीं और ५३८ मौकों पर पुलिस व फौज को गोलियाँ चलानी पड़ीं। कई बार हवाई जहाजों से मशीन गन चलाई गई। गाँव के गाँव सामूहिक जुर्मानों के शिकार हुए, जिससे ९० लाख रुपयों की वसूली हुई। १९४२ के अन्त तक साठ हजार लोग शासन के जेलों में थे। लेकिन सितम्बर के अन्त तक सरकार ने आग पर काफी काबू पा लिया था।

अगस्त के अन्त में आगा खाँ महल के बन्दियों को अखबार और किताबें प्राप्त होने लगीं। गाँधीजी ने दैनिक, साप्ताहिक और मासिक सोलह अखबार मँगाए, जिनमें जिन्ना का डॉन भी था। सरकार ने रिश्तेदारों को पत्र लिखने की छूट भी दे दी। जवाब में गाँधीजी ने कहा कि सरकार को शायद मालूम नहीं है कि पैंतीस साल से ज्यादा हो

गये, मैंने गृहस्थ जीवन छोड़ रखा है और मैं आश्रम जीवन जी रहा हूँ। इस जीवन में महादेव देसाई मेरे अद्वितीय सहयोगी थे। अगर मैं उनके पत्नी बच्चों को नहीं लिख सकता, तो मैं और किसी को क्यों लिखूं? प्यारेलाल नैयर को आप बम्बई से ही मेरे साथ भेजने को तैयार थे, लेकिन आज मैं उन्हें भी लिख नहीं सकता। सरदार पटेल का मैं इलाज कर रहा हूँ और सेवाग्राम की कई गतिविधियाँ मेरे हाथ में हैं। इन सबका संचालन मैं नहीं कर सकता। अतः आपकी इजाजत का कोई अर्थ नहीं है।

बम्बई सरकार ने सेवाग्राम आश्रम के लोगों की सूची माँगी, जिन्हें गाँधी केवल घरेलू मामलों पर पत्र लिख सकेंगे। गाँधी ने कहा कि इन शर्तों पर मैं कोई पत्र नहीं लिखूंगा।

गाँधी बाहरी विश्व से अपने को काटने की प्रक्रिया पूरी कर रहे थे। २६ अगस्त को उन्होंने एक किताब लिखना शुरू कर दिया। नाम था, आरोग्य नी चाबी। तीन महीने तक धीरे धीरे वह इस पुस्तिका को लिखते रहे। दिसम्बर में वह पूरी हुई।

"आरोग्य नी चाबी" की प्रस्तावना में गाँधीजी ने लिखा कि १९०६ में या उसके आसपास मैंने कुछ निबंध लिखे थे जिनका शीर्षक था 'गाइड टु हेल्थ'। यह बाद में पुस्तक रूप में छपी और अनेक भारतीय व योरपीय भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ। मेरी सबसे ज्यादा लोकप्रिय पुस्तक वह बन गई। अब मैं उसी का संशोधित संस्करण पेश कर रहा हूँ, हालाँकि मूल ग्रंथ तक मेरे पास नहीं है।

कुंजी दो भागों में विभाजित है। पहले भाग के अध्याय है: मानव शरीर; वायु ; पानी; भोजन मसाले; चाय, काफी और कोको; नशीले पदार्थ; अफीम; तम्बाकू; ब्रह्मचर्य। दूसरे भाग में पंचतत्त्वों का दवा के रूप में वर्णन है। अध्याय हैं: भूमि; जल; आकाश; सूर्य; वायु।

पानी के अध्याय में गाँधीजी लिखते हैं कि पानी शुद्ध पीना चाहिए, लेकिन शुद्ध पानी प्राप्त करना कई बार मुश्किल हो जाता है।

कुएँ का पानी पीना हमेशा खतरनाक है। उथले कुएँ का और सीढ़ीदार गहरे कुओं का पानी तो बिलकुल ही अपेय माना जाना चाहिए। उनकी सलाह है कि अनजान कुए का और अजनबी के घर का पानी न पीने की पुरानी परम्परा अनुकरण योग्य है। नदी का पानी भी गाँधीजी के अनुसार प्रायः पीने योग्य नहीं होता, हालाँकि लोगों को उसे पीना ही पड़ता है। जब पानी अशुद्ध लगे, तो वे कहते हैं उसे उबाल लिया जाए।

गाँधी लिखते हैं :"व्यवहार में इसका अर्थ यह है कि हरेक को अपने पीने का पानी साथ लेकर चलना चाहिए। भारत में कई कट्टर हिन्दू धार्मिक रूढ़ि के कारण यात्रा के समय पानी नहीं पीते। निश्चय ही अपढ़ लोग जो काम धर्म के नाम पर करते हैं, उसे बुद्धिमान लोग स्वास्थ्य के नाम पर कर सकते हैं।"

पेय जल के बारे में गाँधीजी का यह आग्रह न केवल परम्परावादी है, बल्कि पाश्चात्य भी है। जो अमरीकी भारत में अपने पीने का पानी साथ लाते हैं, वे शायद गाँधीजी की सलाह पर चल रहे हैं। वेस्ट इंडीज के प्रसिद्ध लेखक वी. एस. नैपाल ने अपने पूर्वजों के गाँव में जब रिश्तेदारों के हाथ का पानी नहीं पिया, तब वह अहम्मन्य था या गाँधीवादी ?

दूध को गाँधीजी शाकाहारी भोजन नहीं मानते, क्योंकि वह पशु-उपज है। दूसरी ओर अंडे को गाँधीजी मांसाहार नहीं मानते। वे लिखते हैं कि आजकल निष्प्राण अंडे भी पैदा किये जाते हैं जिनसे कोई चूजा पैदा नहीं होता। इसलिए वे कहते हैं कि जो दूध पी सकता है, उसे निर्जीव अंडे खाने में कोई एतराज नहीं हो सकता।

गाँधीजी सिद्धान्ततः शुद्ध शाकाहार के समर्थक हैं, लेकिन उन्होंने स्वीकार किया है कि दूध के बिना उनका काम नहीं चल पाया। उनकी राय है कि जब तक कोई निस्वार्थ वैज्ञानिक शोध द्वारा ऐसी वनस्पतियाँ नहीं खोजता जो दूध और मांस की क्षतिपूर्ति कर सकें,

तब तक आदमी दूध और मांस खाता रहेगा। लेकिन गाँधीजी को विश्वास है कि वनस्पति विश्व में ऐसी सब्जियाँ अवश्य मौजूद होनी चाहिये।

चाय, काफी और कोको को गाँधीजी ने अनावश्यक माना। चाय का उद्गम बताते हुए वे लिखते हैं कि चीन में पानी प्रायः अशुद्ध होता है, और उसे उबाल कर पीना अनिवार्य है। पानी उबला है या नहीं, इसकी पहचान के लिए चाय आई। यदि उबला है, तो पानी सुनहरा हो जाएगा। यदि नहीं है, तो चाय की पत्ती रंग ही नहीं छोड़ेगी।

गाँधीजी की सलाह है कि चाय आदि के स्थान पर गर्म पानी में शहद और नींबू मिलाकर पिया जाए, तो यह मिश्रण स्वास्थ्यप्रद होगा। नशे के बजाय वे नीरा के, और शकर के बजाय ताड़गुड़ के हिमायती हैं। अफीम की उपयोगिता उनके लिए सिर्फ दवा के रूप में है। तम्बाकू पीने से उनकी राय में आदमी की नाजुक संवेदनाएँ मर जाती हैं, और वह जड़ हो जाता है। साथ ही तम्बाकू पीने से घर में धुआँ भर जाता है, जिससे आग लगने का खतरा है, और तम्बाकू सूंघने से कपड़े गन्दे होते हैं।

दूसरे खण्ड में गाँधीजी ने प्राकृतिक चिकित्सा के उपाय बताए हैं—अनेक प्रकार के मिट्टी के पोल्टिस और अनेक प्रकार के जल एवं वाष्प स्नान। आकाश के बारे में लिखते हुए गाँधीजी आगा खाँ महल के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं :

"कई मकान अनावश्यक सजावट और टेबल कुर्सियों से इतने ठंसे रहते हैं कि इस वातावरण में सादा जीवन पसन्द करने वाले का गला घुँटने लगे। वे सिर्फ धूल, कीटाणु और कीड़े एकत्रित करने के साधन हैं। यहाँ जिस मकान में मैं नजरबन्द हूँ, वहाँ मैं खोया हुआ सा महसूस करता हूँ। भारी फर्नीचर, कुर्सी, टेबल, सोफा, पलंग, असंख्य आईने, ये सब मुझमें झल्लाहट सी पैदा करते हैं। फर्श की महँगी

महँगी कालीनें धूल खाती रहती हैं और उनके नीचे कीड़ों की जन्म-भूमि है। कमरे की कालीन धूल झटकने के लिए एक दिन वाहर निकाली गई। एक आदमी का तो काम था नहीं। छः आदमियों ने दोपहर भर यह काम किया। कम से कम पाँच सेर धूल उन्होंने निकाली होगी। जव कालीन वापस बिछाई गई, तो वह नई सी लग रही थी। लेकिन इन कालीनों को रोज वाहर ले जाकर तो उनकी धूल झटकी नहीं जा सकती। इसमें मेहनत है और कालीनों के रोयें उड़ने लगेंगे। यह तो खैर मैंने प्रसंगवश कहा।.... मैं आकाश के साथ अधिकाधिक सम्पर्क वढ़ाता जाता हूँ।"

आकाश के सिलसिले में गाँधीजी ने विज्ञान के इस कथन को उलट दिया कि प्रकृति शून्य से नफरत करती है। वे लिखते हैं कि प्रकृति तो शून्य की माँग करती है। हमारे आसपास जो महत् शून्य है वह इसी सत्य का प्रकट प्रमाण है।

जव गाँधीजी ने आरोग्य की कुंजी शुरू की तभी उन्होंने यरवदा जेल से कितावें मँगवाई, और अरबी, उर्दू, लुई फिशर की "गाँधी के साथ सात दिन", कुरान शरीफ और बाइवल पढ़ने लगे। लेकिन महादेवभाई की मृत्यु के वाद कुछ दिन तक वे चुप चुप रहते थे। अपने आप में स्थित। मृत्यु के छः दिन वाद तो उन्होंने नियमित मौन ले लिया जो गुरुवार को रात ग्यारह बजे शुरू हुआ, और सोमवार को सुबह छः बजे तक चला। शीघ्र ही अपने मन में उन्होंने एक लक्ष्य, एक संभावना तय कर ली। बार बार वे कहने लगे कि छः महीनों के अन्दर हम इस जेल से वाहर निकल जाएँगे। हमारी लड़ाई सफल हुई तो भी, और लोग हार गए तो भी। छः महीने बाद, वे कहने लगे, हिन्दुस्तान एक बिलकुल वदला हुआ देश होगा। लेकिन क्या होगा

यह वे नहीं जानते थे। एक बार मीराबहन से उन्होंने कहा तुम समझती नहीं कि मैं आजाद आदमी के रूप में ही जेल से निकलूँगा। या तो भारत आजाद होगा या महादेव के पास मेरी भी समाधि बनेगी। सुशीला नैयर से कहने लगे कि अब तो मैं अकेले बाहर निकलना भी नहीं चाहता। अब न इच्छा है, न श्रद्धा है, न शक्ति है। आज ईश्वर मुझसे कोई इच्छा नहीं करा रहा। ठीक है, ईश्वर को लगा होगा कि आन्दोलन ऐसे ही चल सकता है।

बा ने महल के बरामदे में एक तुलसी का पौधा मँगा रखा था। उसकी मँगनी और ब्याह भी हुए। जब वह बूढ़ा हुआ, तो मीरा बहन ने कहा कि दूसरा पौधा लगा देते हैं। बापू बोले, नहीं यह ६ फरवरी तक चलेगा। ६ फरवरी हमारी यहाँ की आखिरी तारीख है। उसके बाद यहाँ दूसरी हालत में रहेंगे।

महादेव देसाई की मृत्यु को देश ने चुपचाप सह लिया, यह बात गाँधीजी को अखरी। घूमते समय एक दिन बोले : भगतसिंह की मृत्यु के बाद जब मैं लार्ड अर्विन से समझौता करके कराँची जा रहा था, तो लोगों के झुण्ड हर स्टेशन पर मेरे पास आकर चिल्लाते थे, "लाओ भगतसिंह को!" इसी तरह अब की वे सरकार को कह सकते थे, "लाओ महादेव को!" सरकार लाती तो कहाँ से? कुर्बानी निष्फल होने के कारण एक व्यर्थता-बोध उनके मन में था।

सुशीला नैयर ने एक बार उनसे पूछा कि आपको इतनी चोट किसी और मृत्यु से नहीं लगी होगी। गाँधीजी ने जवाब दिया, "नहीं, मगनलाल, जमनालाल और महादेव तीनों अपनी अपनी जगह स्तम्भ थे। अद्वितीय थे। तीनों के जाने से जो जगह खाली हुई है, वह भर नहीं पाई।"

और कस्तूरबा के लिए महादेव देसाई की समाधि महादेव का मन्दिर बन गई। वे उनके शंकर भगवान हो गए।

जीवन दैनन्दिन का

पहले सप्ताह की इस दुर्घटना के बाद आगा खाँ महल का जीवन क्रमशः सामान्य होने लगा। गाँधीजी को सेक्रेटरी की जरूरत थी, अतः सरकार ने प्यारेलाल को उनके पास स्थानान्तरित कर दिया। ११ सितम्बर को वे बापू के पास पहुँचे। नजरबन्दी की जिन्दगी का एक ढर्रा सा बनने लगा। "हम अपना काम यंत्र के समान समय पर करें, मगर यंत्र बनकर नहीं", गाँधी ने एक बार कहा था। कैदी यदि सुस्त होते तो समय का पहाड़ काटे नहीं कटता। लेकिन गाँधीजी के राज में सब को मिट्टी के हर घनफुट का हिसाब रखना था।

ढर्रा था, लेकिन उसमें विविधता भी काफी थी। जेल में गाँधीजी के दल ने हर त्यौहार मनाया, वर्षगाँठे मनाई, नये साल मनाए, झाँकियाँ सजाई, पूजाएँ कीं। सब से पहले कृष्ण जन्माष्टमी आई, तो अंग्रेज भक्तिन मीराबहन ने अपने बक्से में से कृष्ण की एक हाथीदाँत की मूर्ति निकाली और उसकी पूजा की। दो दिन बाद पारसियों का नया साल आया तो आगा खाँ महल के जेलर मिस्टर कटेली के लिए नाश्ते की मेज पर फूल सजाए गए, और उन्हें एक बटनहोल भेंट किया गया। सरोजिनी नायडू की रुचियाँ बहुत रईस थीं। उनका जन्म दिन आया, तो बकरी के दूध की आइसक्रीम बनाई गई जो बापू ने भी खाई। गाजर का हलवा, मटर पुलाव, जिंजर केक और कढ़ी बनी। फूल सजे। कैदियों और सिपाहियों को चिवड़ा और केले बाँटे गए।

कटेली ने सूरत की मिठाइयाँ खिलवाईं। (कटेली का खाना भी गाँधीजी की टीम के साथ ही होता था। पहले उनका खाना बाहर से आता था, लेकिन वह ठण्डा हो जाता। तब सरोजिनी नायडू ने निमंत्रित किया वे साथ ही खाया करें और वे मान गए।)

२ अक्टूबर आगा खाँ महल का सब से बड़ा उत्सव पर्व होता। पहला जन्म दिन आया, तो एक दिन पहले गाँधीजी ने बताया, "सब से कह दो, सजावट नहीं होनी चाहिए। सजावट हृदय के भीतर की हो।" लेकिन सरोजिनी नायडू क्या मानती! वे स्वायत्त महिला थीं, और गाँधीजी के आश्रम परिवार की सदस्या वे कभी नहीं बनी थीं। बापू के तौर तरीकों के बारे में वे ठिठौली भी कर लेती थीं। कहने लगीं, मुझे यह आदेश कहाँ दिया गया है कि मैं जेल में भी गाँधीजी के हुक्म का पालन करूँ?

लेडी प्रेमलीला ठाकरसी के यहाँ से सब्जी की टोकरी आई। शहद आया और गुड़ आया। गुड़ की टॉफी बनी। कमरों और दरवाजों पर फूलों के हार लटकाए गए। महल से बगीचे में जाने वाली सीढ़ियों पर सफेद राँगोली से "जीवेम शरदः शतम" और "तमसो मा ज्योतिर्गमय" के पूरे मंत्र लिखे गए। राँगोली से चित्र भी सुशीला नैयर ने बनाए। आधी रात के बाद सब सोये।

सवेरे गाँधी उठे तो उन्होंने कमरे हारों से लदे देखे। सरोजिनी नायडू से बोले, "मुहब्बत भी किसी पर लादनी नहीं चाहिए।" नाश्ते के लिए आए, तो टोकरी में उनके लिए फल, बादाम और टॉफी रखे थे। फूल और सूत के हार उन्हें पहनाए गए। तभी मीराबहन और प्यारेलाल एक एक बकरी का बच्चा लेकर आ पहुँचे। दोनों बकरियों के गले में फूलपत्तों के हार थे, और सहनाववतु, सहनौभुनक्तु का मंत्र गले पर लिखा हुआ लटक रहा था। मीराबहन ने बकरियों की ओर

से स्तुति की और प्रणाम करवाया। बापू ने उन्हें रोटी दी। बकरियाँ अपने गले के हारफूल खाने लगीं।

दोपहर को सिपाहियों और कैदियों को दाल, सेव, पेड़े, जलेबी और केले दिए गए। उन्हीं के लिए बाजार से मंगाए थे। कटेली ने आइसक्रीम बनाई। तीस साल बाद गाँधीजी ने इन दिनों आइसक्रीम खाई थी।

गाँधी इस उत्सव से खुश नहीं हुए। बोले : "सरोजिनी नायडू काम तो बहुत बढ़िया कर लेती हैं, लेकिन सच्ची संस्कृति की कीमत देकर। मैंने यह सब सहन किया, अड़ जाता तो तुम लोग नहीं कर पाते।"

लेकिन साल भर बाद २९ सितम्बर १९४३ को गाँधीजी का जन्म दिन (हिन्दू तारीख से) फिर समारोहपूर्वक मना। सबेरे पारसी पगड़ी और लम्बा सफेद कोट पहनकर कटेली आए और हाथ के बने बटुवे में ७५ रुपये भेंट कर गए। चाय के बाद गाँधीजी को बताया गया कि कुछ मेहमान आप से मिलने आने वाले हैं। विजिटिंग कार्ड भी दिए गए। गाँधी आए। हँसते हँसते बोले, आप लोग कहाँ से आए हैं? सब से पहले पारसी कपड़े पहने हुए मनु गाँधी बैठी थी। नाम रखा था जेरबाई। उसने उठकर फल की टोकरी दी। फिर ब्रदर लॉरेंस उठे—रोमन केथलिक साधु। सुशीला नैयर ने यह रोल अदा किया। उन्होंने मीराबहन का काला ऊन का चोगा पहन लिया था और कमर से रस्सी बाँध ली थी। दाढ़ी मूँछ भी पेंस्टिल से बनी थी। ब्रदर लॉरेंस ने गुलदस्ता और "माउण्ट आफ ब्लेसिंग्ज" भेंट किया। फिर आए रामाचुल्लू नम्बूद्रीपाद, याने प्यारेलाल। मलयाली बोलने का नाटक करते हुए साष्टांग लेट गए, और नींबू और नारियल भेंट किया। सरदार शमशेरसिंह मीराबहन बनी थीं। उन्होंने डा. गिल्डर की पतलून,

लाल कुर्ता और सफेद कोट और अपनी ओढ़नी की पगड़ी पहनी थी। कोट की जेब में रेशमी रूमाल ! सुशीला नैयर के कटे हुए बालों की नकली दाढ़ी। पेस्टिल की मूँछें। स्वाँग देखते ही बनता था। सत श्री अकाल के नारे के साथ सरदारजी ने महात्माजी को मिठाई का थाल भेंट किया। अन्त में आए सिकन्दर अकबर खान—डॉ. एम. एम. डी. गिल्डर—पठानों के वेश में कुर्ता, वास्कट, लम्बा कोट और पगड़ी। बोले "तीड़ा माशे मलंग बाबा।" सब लोग बेहद हँसे।

दिन भर कुछ न कुछ चलता रहा। शाम को मीराबहन और प्यारेलाल मिट्टी का एक मन्दिर बनाने लगे। लकड़ी के पट्टे पर एक इमारत खड़ी हुई, जिसके एक तरफ मस्जिद थी, एक तरफ गिरजाघर और बीच में महादेव का मन्दिर। एक पारसी अगियारी भी थी। सामने बगीचा था। आटे के दिए तीन तरफ जल रहे थे। चारों तरफ पत्ते और फूलों के गमले। मन्दिर इतना अच्छा बना था कि दूसरे दिन सुशीला नैयर उसका चित्र बनाने बैठ गई। मन्दिर महीनों तक कायम रहा।

दो बार जेल में मीराबहन की सालगिरह आई। सत्रहवीं और अठारहवीं। तब मीराबहन सचमुच ५१ और ५२ वर्ष की थी। वे बापू के पास जाने के दिन को अपना जन्म दिन मानती थीं और इसी हिसाब से अपनी उम्र गिनती थीं। पहली सालगिरह आई तो सरोजिनी नायडू ने आंध्र की एक साड़ी, बिन्दी, इलायची और अपनी कविता—फ्लूट प्लेयर ऑफ वृन्दावन—बंडल बनाकर दी। डा. नैयर ने सीता और राम की मूर्ति और अगरबत्तियाँ बाजार से मँगवाई और बादाम की टॉफी बनाई। मिस्टर कटेली ने एक इकतारा बनवाया। कैदियों को चाय और केले दिए गए। ये दिवाली के भी दिन थे। महादेवभाई की समाधि पर शंखों के बीच बीच में अगरबत्तियों की कतार लगाकर दिवाली मनाई गई। १९४३ में जब मीराबहन की सालगिरह आई

तो एक कैदी ने मिट्टी के गाय, बैल और बकरी बनाकर उन्हें भेंट किए। वे रंगे हुए थे और लकड़ी के खोखे में थे।

इसी तरह हिन्दू भावना से त्यौहार मनते रहते। पद्मजा नायडू का जन्म दिन हो या पारसियों का नया साल हो, कुछ न कुछ अवश्य किया जाता। डॉ. गिल्डर के उपलक्ष्य में एक बार गुड़ के सिगार बने। २६ जनवरी १९४३ को जब स्वाधीनता दिवस आया, तो बगीचे में आम के पेड़ के नीचे एक छोटा सा खम्भा गाड़ा गया। जैसे तैसे तिरंगा झंडा बनाया। हल्दी और सोडा मिलाकर नारंगी रंग, पेंस्टिल का हरा, और पेंसिल से बना हुआ चर्खा। सभा हुई। पहले सब ने "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" गाया। गाँधीजी ने झण्डा फहराया। झण्डे के लिए एक गाना हुआ। स्वतन्त्रता की प्रतिज्ञा दुहराई गई। वन्दे मातरम् हुआ। सरोजिनी नायडू बोलीं : "लाखों लोग होते तो भी करना तो यही था न?" लगभग इसी प्रकार ८ अगस्त को भारत छोड़ो दिवस की सालगिरह मनी। ६ से १३ अप्रेल तक राष्ट्रीय सप्ताह भी जेल में दो बार मना। १३ अप्रेल १९४३ को सब ने उपवास रखा, लेकिन कैदियों को चाय पिलाई और हलुआ और दाल सेव दिया। गाँधीजी ने कैदियों को समझाया कि राष्ट्रीय सप्ताह क्या है और १९१९ में क्या हुआ था।

कस्तूरबा ने दो बार तुलसी की शादी की। पहले मँगनी हुई, फिर ब्याह। मण्डप बना, हारफूल चढ़े, राँगोली बनी और फलों की भेंट रखी गई। पौधा बा ने बरामदे में मंगवा रखा था। हर रोज उस पर दिया जलातीं और उसकी पूजा करतीं। जिस दिन मकर संक्रान्ति आई, उस दिन सुशीला नैयर ने तिल, बादाम, पिस्ता व काजू डालकर बेसन की मिठाइयाँ तैयार कीं और वे बाँटी गईं।

लेकिन आगा खाँ महल का जीवन केवल समारोह नहीं था। मूलतः वह एक गम्भीर और कर्तव्य चेतन जीवन था जिसमें हर सदस्य अपनी साँसों का हिसाब रखता था। पढ़ाई लिखाई और कताई में

गाँधीजी का काफी समय जाता । हालांकि इस बार उनमें १९२१ की तरह अध्ययन करने की क्षमता नहीं बची थी, लेकिन फिर भी उन्होंने काफी पढ़ा । रामायण, गीता और बाइबल तो उनके स्थायी आहार थे । पढ़ते भी और पढ़ाते भी, कभी बा को, कभी सुशीला नैयर को, कभी मनु को । रामायण के एक एक शब्द का अर्थ कई बार दस दस मिनिट तक समझाते रहते । प्रायः वह प्रार्थना में गाई जाती । फरवरी १९४३ में तो उन्होंने बा के लिए रामायण का एक संक्षिप्त संस्करण तैयार करना शुरू कर दिया । पता नहीं उनके निशान लगीं वे प्रतियाँ अब कहाँ हैं । गीता के कई बार समूचे अध्याय पढ़े जाते, और कभी एक एक श्लोक का विश्लेषण होता । भजन और प्रार्थना भी उनका स्थायी पोषण था । अपने द्रवित और मार्मिक क्षणों में गाँधीजी मीराबहन को बुलाते , उनसे ईसाई भजन : "व्हेन आय सर्वे द वंड्स क्रॉस" सुनते और भाव विभोर हो जाते । कहते थे : बस मुझे तो इस भजन के बराबर और कोई अंग्रेजी भजन लगता ही नहीं है । महादेव को अनेक गीत जबानी याद थे जिन्हें वे अक्सर गाते रहते थे : तुकाराम के अभंग, गीतांजलि, गुजराती के भजन । सुशीला नैयर ने कारावास के दिनों में गीता का बारहवाँ अध्याय कंठस्थ कर लिया । कुरान से अउज़ अबिल्ला वाला पद अक्सर पढ़ा जाता ।

धर्मग्रंथों के अलावा भी गाँधीजी ने किताबें पर्याप्त पढ़ीं । अकबर इलाहाबादी के शेर 'कहो करेगा हिफाजत मेरी खुदा मेरा' पर वे मोहित हो गए । मेडम क्यूरी की जीवनी उन्होंने पढ़ी और कहने लगे कि हिन्दुस्तान में प्रयोगशालाएँ सफेद हाथी की तरह खर्चीली हैं, जिनमें काम नहीं होता । क्या एक भी वैज्ञानिक भारत में है, जिसने क्यूरी की तरह तंगदस्ती भोगी हो ? कुछ दिनों उन्होंने उपन्यास पढ़े : विक्टर ह्यूगो का "ले मिजराब्ल", उसी का "नाइंटी थ्री", गलिवर्स ट्रेवल्स, हाउ ग्रीन वाज माय वैली, द गुड अर्थ, इत्यादि । लेकिन ललित साहित्य पढ़ना गाँधी को रुचता नहीं था । साहित्य के खिलाफ उन्हें मूलतः वही शिकायत थी, जो सुकरात और प्लेटो को थी ।

२३ जनवरी १९४३ को वे घूमते हुए प्यारेलाल से कहने लगे कि साहित्य में उपन्यास का क्या स्थान है ? प्यारेलाल ने कहा कि वहुत बड़ा स्थान है । वे उपन्यास की उपयोगिता वताने लगे । बापू को बात नहीं जँची । कहा, "कैसी विचित्र वात है । काल्पनिक चीजों को तो बड़ा स्थान दिया है, और जीवन की असली चीजों को स्थान ही नहीं दिया ।....मेरी समझ में तो उपन्यासों ने वहुत नुकसान किया है ।"

जेल में गाँधी ने संस्कृत पढ़ी और व्याकरण पढ़ा । पुरानी पीढ़ी के बुजुर्गों की तरह वे व्याकरण के कायल थे । उन्होंने 'विश्व इतिहास की झलक' पढ़ी और उस पर भी इतने मुग्ध हुए कि अनुवाद की इच्छा करने लगे । उन्होंने शेक्सपियर और कार्लाइल पढ़ा और एडविन आर्नल्ड की लाइट आफ एशिया सुनी—कई ग्रंथ वे केवल सुनते ही थे । उपन्यास के विरुद्ध होते हुए उन्होंने अरेबियन नाइटस् भी पढ़ी । लेकिन हर ग्रंथ का अर्थ वे अपने हिसाब से निकाल लेते थे । ओल्ड टेस्टामेंट में यदि लिखा है कि ईश्वर अपने भक्तों के शत्रुओं का नाश कर देता है, और प्लेग भेज देता है, तो बापू कहते थे कि मेरे हिसाव से इसका सार यह है कि ईश्वर को जो करना है, वह किसी के मार्फत करवा लेता है । भारत में भी उसे जो करवाना होगा, करा लेगा ।

इस वार गाँधी ने साम्यवाद के शास्त्रीय ग्रंथ भी पढ़े । कार्ल मार्क्स की "पूँजी" का पहला खण्ड पढ़ा और एंजिल्स, लेनिन और स्टालिन की कितावें पढ़ीं । लेकिन इन किताबों का उन पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं हुआ ।

आगा खाँ महल में गाँधीजी ने एक नई गतिविधि शुरू की । उन्होंने ७३ वर्ष की उम्र में कस्तूरबा को पढ़ाना शुरू किया । कभी भजन के स्वर सिखाते, कभी गुजराती, कभी गीता, कभी भूगोल । पूरा वाल महाभारत उन्होंने बा को सुनाया । कस्तूरबा का सामान्य ज्ञान ऐसा था कि लाहौर को वे कलकत्ता की राजधानी बताती थीं और तीन सौ के पहले दो सौ आता है यह उन्हें पता नहीं था । गाँधीजी को

पढ़ाने में रस आने लगा, और बा व बापू दोनों को अफसोस हुआ कि पहले ही यह क्रम शुरू क्यों नहीं किया। जब बापू ने शुरूआत की तो सरोजिनी नायडू हँसकर कहने लगी : "७४ वर्ष के बूढ़े नवविवाहित दम्पत्ति जैसा स्वाँग रचकर आनन्द ले रहे हैं।" सरोजिनी नायडू और गाँधीजी के बीच अनौपचारिक चुहल के सम्बन्ध थे। गाँधी सरोजनी को प्रायः बुढ़िया और अम्माजान कहकर पुकारते, और सरोजिनी गाँधी की गंभीर उक्तियों को विनोद से हलका बना देती।

कस्तूरबा को सिखाने के लिए गाँधी खुद भी पढ़ते। एक बार जेल में नया केलेण्डर आया, जिस पर भारत का नक्शा और गाँधीजी का चित्र बना हुआ था। नक्शा भूगोल के काम में लाया गया, लेकिन बापू का चित्र अच्छा नहीं था, इसलिए मीराबहन ने उस पर कागज चिपका दिया। बा अक्सर बीमार रहा करती थीं, और बापू को उनकी सेवा करने में भी विशेष रस मिला। बा का ऋण वे कुछ कुछ उतार रहे थे। एक एक घंटे तक वे बा को प्राकृतिक चिकित्सा वाले स्नान कराते। एक बार बोले, "मुझे बड़ा अच्छा लगता है कि इस अवस्था में मुझे बा की सेवा करने का अवसर मिल गया है। इससे मुझे पूरा सन्तोष है। बा को भी अच्छा लगता है। बा अब इसमें तन्मय हो गई है। हँसती है और खुलकर बातें भी करती है। बा मेरा समय बचवाना चाहती है, मगर मैंने उसे समझाया है कि मेरे काम की वह चिन्ता न करे। वह हुआ तो क्या और न हुआ तो क्या। बा को स्नान से फायदा भी बहुत है। कहती थी कि जलन तो बरसों से थी, मगर मालूम नहीं अब वह कहाँ चली गई।"

बा और बापू के विवाहित जीवन के वे संभवतः स्निग्धतम क्षण थे।

:

लिखने की कई योजनाएँ गाँधीजी के पास थीं, लेकिन वे पूरी नहीं हुईं। प्यारेलाल के अनुसार तीन पुस्तकें लिखने का काफी समय से उनका इरादा था। आत्मकथा का दूसरा खण्ड, आश्रम का

इतिहास और जैन धर्म का इतिहास। इन विषयों को उन्होंने छुआ भी नहीं। महादेव देसाई के संस्मरण उन्होंने शुरू किए, लेकिन वे पूरे नहीं हुए।

गाँधीजी जानते थे कि अध्ययन के मामले में उनकी रुचियाँ एकांगी हैं, लेकिन वे इससे असन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने इस विषय में कहा, "रामायण की भाषा मुझे पकड़ लेती है।....मैंने अपना अभ्यास ऐसी चीजों का ही रखा है। दूसरी चीजें जान बूझकर छोड़ दी हैं, नहीं तो साहित्य तो मैं बहुत पढ़ सकता हूँ। रस तो भरा ही पड़ा है। कोई रस सूखता नहीं है। मगर मैंने अपने काम की चीजें चुन ली हैं।"

घूमते समय अक्सर गांधी अपने जीवन की कहानी सुनाते। यह उनकी आत्मकथा का मानो सस्वर पाठ था। कैसे उन्होंने हँसी मजाक का डर होते हुए भी घुटनों से ऊपर तक की धोती पहनने का निश्चय किया और अटपटेपन के बावजूद उस पर अड़े रहे; कैसे 'अंटु दिस लास्ट' पढ़ने के बाद वे रात भर सोये नहीं, और दूसरे ही दिन अपना जीवन बदल दिया; कैसे वे भूतप्रेत से डरते थे, और रम्भा नामक धाय द्वारा दिए गए रामनाम के नुस्खे का उन पर असर हुआ। ढेरों संस्मरण, जनरल स्मट्स और लार्ड अर्विन के, लायड जार्ज और बाल्डविन के, केलेनबाक और पोलक के, वेजवुड बेन और सेमुअल होर के, जिन्ना और मौलाना मोहम्मद अली के। ७३ वर्ष की उम्र में भी उन्हें अपनी जीवन की रूपरेखा ऐसे याद थी, जैसे सब कुछ कल ही हुआ हो। व्यथा और व्यग्रता को जब हम बहुत दिनों बाद स्थित-प्रज्ञ क्षणों में याद करते हैं, तब हमें उसके अर्थ का अहसास होता है। कारावास के निश्चल क्षणों में एक चंचल अतीत की याद! गाँधीजी के लिए हर अनुभव एक गाँठ थी, जो बँधी तो बँधी ही रह गई। इसीलिए जब वे आगा खाँ महल में घूमने जाते, तो आत्मकथा में लिखी हुई घटनाओं को लगभग ज्यों का त्यों दुहराते। यह आत्म-

कथा उन्होंने साहित्यकार की तरह नहीं लिखी, जो औपन्यासिक सुसंगति और प्रभावोत्पादकता की कसौटियाँ लेकर आता है, और अपने जीवन को ललित उपन्यास सिद्ध करते हुए उपाख्यान लिख देता है। जो तत्काल नगण्य रहा हो, उसे लेखन महत्वपूर्ण बना देता है। कई बार लेखन ही जीवनी को जीवनदान देता है। गाँधीजी के साथ ऐसा नहीं था। उनकी आत्मकथा में साहित्यकार की आत्म छलना कम से कम है। एक वैज्ञानिक की तरह से अपने प्रयोगों की रिपोर्ट देते हैं, और इन प्रयोगों के नतीजे पत्थर की लकीर की तरह उनके दिमाग पर अंकित हैं। साहित्य (जैसा कि सुकरात को डर था) उनके लिए मिथ्याज्ञापन नहीं है, वल्कि सत्य का विज्ञापन है। इसलिए जो वे लिखते, उसे घूमते समय उसी महत्वानुक्रम से बोल भी सकते थे।

डॉ. सुशीला नैयर को गाँधीजी महादेव देसाई का स्थान लेने के लिए तैयार कर रहे थे। जनवरी १९४३ में उन्होंने कहा : 'मैंने तुझे कहा है कि महादेव का काम तुझे करना है। मैं नहीं जानता तू कहाँ तक कर सकेगी। प्यारेलाल तो है, मगर अकेले के लिए शायद वह काम वहुत हो जावे। तुझे तैयार होना चाहिए।' इस तैयारी की ड्रिल के रूप में डॉ. नैयर ने भाषा और व्याकरण सीखा, धर्मग्रंथ पढ़े, बापू के कपड़े धोये और मालिश की, कस्तूरवा की सेवा की, वाइसराय को चिट्ठी लिखने में मदद दी, आरोग्य की कुंजी का अनुवाद किया। अभिभावक की तरह गाँधीजी ने सुशीला नैयर की गतिविधियों की निगरानी की। गुरु के रूप में उनका अनुशासन सख्त था, और जरासी ढिलाई से वे चिढ़ जाते थे। वे चाहते थे कि मुँह से जो भी बात निकले वह प्रतिज्ञा वन जाए, वर्ना वह निकले ही नहीं। सुशीला नैयर के साथ वे ऐसी बहुत सी वातें कर लेते, जो और किसी से नहीं करते। कहते, "ऐसे ही गोखले मेरे साथ सब वातें कर लिया करते थे। उनके मित्र तो वहुत थे, लेकिन ऐसा कोई नहीं था कि जिसके सामने निस्संकोच अपने मन की सारी वातें कह सकें। मुझे उन्होंने विश्वास पात्र समझा।"

संक्षेप में, सुशीला नैयर उस प्रयोगशाला में रहीं, जिसमें गाँधी मामूली मिट्टी लेकर उसमें प्राण फूंकते थे। एक पूरी पीढ़ी में उन्होंने प्राण फूंके, और यह प्रक्रिया अन्त तक जारी थी। उदाहरण के लिए, केबिनेट मिशन के दिनों में सुधीर घोष नामक एक नौजवान को उन्होंने अपना राजनैतिक सन्देशवाहक वनाया, और हालाँकि नेहरु को सुधीर घोष विलकुल नहीं जँचे, लेकिन वापू का वरद हस्त उन पर वना रहा। गाँधी अगर जीवित होते, तो उनके रचे हुए पात्र किस साँचे में ढलते और आज क्या रोल अदा करते, यह कल्पना ही की जा सकती है।

अनेक वार गाँधी का वर्ताव औसत लोगों को चौंकाने वाला होता था। एक बार डॉ. सुशीला नैयर के वालों में सफेद चिकना मैल जम गया था, जो निकलता ही नहीं था। वापू और प्यारेलाल ने सोचा कि वाल साफ कर दिए जाएँ। लेकिन यह एक किताबी हल था, जिसे आजमाने में सब झिझक रहे थे। एक दिन डॉ. नैयर वाल धोकर आईं, तब इसी वारे में मजाक चलता रहा, और उन्होंने कह दिया, "तो भले काटें।" गाँधीजी ने कैंची उठाकर एकदम पहले चोटी काटी और फिर वाकी के बाल काट डाले। फिर एक कैदी को बुलवा कर उस्तरा फिरवा दिया गया। घर में सब रुआँसे हो गए और मनहू-सियत छा गई। लेकिन वापू बोले : "कल्पना की बात है न! मुझे तो तुम्हारा यह विना वालों का सिर और चेहरा अच्छा दिखता है।" बात सिर्फ कल्पना की नहीं थी, वल्कि अधिकार की थी। अपने आश्रम की अध्यक्षता करना और अपना 'मार्शल ला' वहाँ लागू करना गाँधी को अच्छा लगता था।

फरवरी १९४३ में वगीचे में एक बेडमिंटन कोर्ट तैयार हो गया, जिसका गाँधीजी ने उद्घाटन किया। दो चार वार चिड़िया जाली के उस पार भेज दी। प्यारेलाल, मीराबहन, सुशीला नैयर, डा. गिल्डर, कनु और मनु गाँधी और मिस्टर कटेली अक्सर बेडमिंटन खेलते।

रिंग का खेल, डोरी फाँदना और एक टाँग की दौड़ भी होती। शाम को यह नियम सा बन गया। कस्तूरबा भी देखने आतीं। रात को कैरम खेला जाता, और कस्तूरबा उसमें शामिल भी हो जातीं। इन खेलों से उनके जीवन की निराशा और नीरसता कुछ कम हुई। एक ग्रामोफोन था, वह भी सुबह घंटा डेढ़ घंटा बजता, और कस्तूरबा तल्लीन होकर भजन सुनतीं। साल भर बाद वजन का काँटा आ गया, जिस पर सब तौल लेते थे, और एक दिलरुबा था, जिसे मनु बजाती। लेकिन मनु को जब चश्मे की जरूरत हुई तो गाँधीजी ने कहा कि हम कैदी हैं, इसलिए यह खर्च सरकार को उठाना चाहिए। सरकार चश्मा दे वर्ना भले ही वह लड़की अपनी आँख खो दे। आखिर सरकार ने चश्मा देना मंजूर किया। उस दिन मनु का सोलहवाँ जन्म दिन था, और कैदियों को आम और खजूर बाँटे गए। कस्तूरबा जब बीमार पड़ीं, तो सरकार ने उनके घूमने फिरने के लिए पहियेदार कुर्सी भेजी, और मीराबहन की सुविधा के लिए एक बिजली का चूल्हा था।

आगा खाँ महल के पेड़ पौधों और चिड़ियों से सब से ज्यादा प्रेम मीराबहन को था। उनके लिए आदमी, पशु, फूल और वृक्षों में कोई अन्तर ही न था। अक्सर वे बकरियों से और फूल पत्तों से बातें करती रहतीं। एक बार सुशीला नैयर कुछ बीमार पड़ीं, तो मीराबहन ने उनकी सेवा की और उन्हें थपकियाँ देकर सुलाया, और कहने लगीं: नाइस लिट्ल गोट। बकरी उनके लिए कोमलता और संवेदना का उच्चतम प्रतीक थी। गाँधीजी की बकरी को दुहना भी उन्हीं का काम था। गाँधीजी की वर्षगाँठ पर बकरी से अभिनन्दन करवाने की योजना उन्हीं की थी। लेकिन वे व्यक्तिवादी महिला थीं; और गाँधीजी के साथ सिर्फ आश्रम के सामुदायिक रिश्ते उन्हें पसन्द नहीं थे। गाँधीजी के साथ उनके पृथक रिश्ते और पृथक दावे थे। कई बार वे घूमते समय होने वाली सामूहिक बहस में अपनी समस्या नहीं रखतीं, और चाहतीं कि गाँधीजी के साथ अकेले समाधान खोजें। जेल

में साल भर बाद उनकी टाँगों में दर्द शुरू हो गया, जो काफी बढ़ा। मीराबहन करताल बजातीं, रामधुन गातीं और अपने अंग्रेज उद्‌गम को जितना सम्भव होता उतना मेटतीं। वे पंजाबी सलवार कुरता पहनतीं और एक गाँधीवादी नन की तरह आगा खाँ महल में रहतीं।

गाँधीजी के कई कई दिन चिट्ठियाँ लिखने में जाते। सात चिट्ठियाँ उन्होंने लार्ड लिनलिथगो को लिखीं, और तीन लार्ड वैवल को। वाइसराय की कार्यकारिणी के होम मेम्बर सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल से और गृह विभाग के सेक्रेटरी सर रिचर्ड टॉटनहम से काफी पत्र व्यवहार हुआ। पत्रलेखन में सारा आश्रम ही हाथ बँटाता। कई बार लोग अपने अपने मसविदे गाँधीजी के सामने पेश कर देते, और बापू उनका समन्वित पत्र बनाते। बापू के पत्र में कई कई बार संशोधन होते। कुछ पत्र भेजे ही नहीं जाते; कुछ दूसरी बार लिखे जाते। एक से अधिक बार प्यारेलाल पत्रों को टाइप करते, और अंततः वे मिस्टर कटेली को सौंप दिए जाते। टाइप का काम कई बार देर रात तक चलता रहता। कई बार गाँधीजी मौखिक ही लिखवाते। सरकार को एक पत्र लिखने में तो गाँधीजी को पूरे तीन महीने लगे। वह पत्र क्या था, एक पुस्तक थी, जो गाँधीजी ने सरकारी आरोपों का जवाब देने के लिए तैयार की थी। शासन ने एक पुस्तिका छापी थी: उपद्रवों में काँग्रेस की जिम्मेदारी, १९४२-४३। गाँधीजी ने इसका जो जवाब दिया वह नवजीवन द्वारा प्रकाशित पुस्तक में १२३ पृष्ठ घेरता है। तीन महीने तक सारा आगाखाँ महल एक दफ्तर ही बना रहा, जिसमें हरिजन की पुरानी फाइलें छाँटी जातीं, अखबारों की कतरनें निकाली जातीं, और परिशिष्ट तैयार किये जाते।

आगा खाँ महल में गाँधी का जीवन चार खंडों में बँट सकता है। पहला खण्ड प्रतीक्षा का था, जो ९ अगस्त १९४२ से ९ फरवरी १९४३ तक चली। फरवरी में बापू ने २१ दिन का उपवास किया, और इस

खण्ड को समाप्त किया। फिर अप्रेल से जुलाई तक वे सरकार के झूठ का जवाब देते रहे, और जो उन्होंने उपवास द्वारा किया था, उसे वे पुस्तकाकार करने लगे। यह पत्र समाप्त होने के वाद वे अखवारों की कतरनें निकालने में भिड़ गए। पता नहीं यह काम उन्होंने हाथ में क्यों लिया, जवकि वे और भी कुछ कर सकते थे। लेकिन इसमें उन्हें रस आने लगा। अखबारों से कतरनें काटी जातीं, और उनके सिरे पर लगी पर्ची पर पत्र का नाम और तारीख लिखे जाते। छोटी छोटी कतरनों को जोड़कर लम्बा बना लिया जाता, ताकि वे खोएँ नहीं। फिर २५-२५ कतरनों को सीकर उनका बण्डल बना लिया जाता। उन्हें रखने के लिए पहले गत्ते का लिफाफा वनाया गया, लेकिन वह लचकने लगा, तो लकड़ी के पतले तख्ते वनाए गए। चार अखवारों पर रोज निशान लँगाए जाते—हिन्दू, हिन्दुस्तान टाइम्स, हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड और स्टेट्समेन। फिर गाँधी उनकी अनुक्रमणिका – इंडेक्स तैयार करने लगे। मिस्टर कटेली भी इस काम में हिस्सा बँटाने लगे, और सारा घर फिर व्यस्त हो गया। गाँधी कहने लगे कि सरकार को जो पुस्तिका उन्होंने भेजी, उससे ज्यादा रस उन्हें कतरनों के काम में आ रहा है। प्यारेलाल से बोले : एक सुन्दर चीज़ वन गई है। जो कतरन चाहिए उसे निकालते एक मिनिट की देर नहीं लगती। लाइब्रेरी की अलमारियों की तरह इनमें एक क्रम है। अनुक्रमणिका देखो और जो चाहे निकाल लो। मीरा वहन से कहने लगे कि सात साल तक मुझे यही काम करना हो, तो मुझे वह खटकेगा नहीं।

इन कतरनों का क्या होगा, यह गाँधी जानते नहीं थे। कहते थे कि प्यारेलाल को और शेष लोगों को वाद में काम आएँगी—शायद सन्दर्भ सामग्री के रूप में। मैंने अपनी जिन्दगी में ऐसे कई छुटपुट काम किए हैं, जो वाद में उपयोगी साबित हुए, वस यही उनकी सफाई थी। लेकिन लगता है इन दिनों और कोई काम करने का संकल्प गाँधीजी में नहीं था। सरकार को लम्बा जवाव लिखते समय उन्होंने पाया

कि उनकी मानसिक शक्तियाँ बुढ़ापे से शिथिल पड़ गई हैं। एक चीज को तुरन्त पढ़ कर समझ लेने की उनकी शक्ति कुछ कम हुई, और याददाश्त में भी कमजोरी आई। एक बार पढ़ते तो कुछ खुलता, दो बार पढ़ते तो फिर कुछ और खुलता। वे पाते कि जितना करारा जवाब वे देना चाहते हैं, उतना करारा वह वन नहीं रहा है। तर्क के स्तर पर वे जीवन भर उग्रता के हामी थे, क्योंकि तर्क की हिंसा अन्ततः उग्र अहिंसा है। लेकिन आगाखाँ महल में कई मौके ऐसे आए, जब तर्क से भी उनका मन फिर गया। एक बार वे बोले : "सरकार को भी आज पत्र लिखता हूँ तो सिर्फ उसकी जानकारी के लिए। दलील करना मैंने छोड़ दिया है। भाषा का डंक निकल गया है। शुद्ध अहिंसा ही उसमें भरी है।"

भाषा का डंक निकल जाना क्या शुद्ध अहिंसा का लक्षण है? क्या ओजस्वी एवं प्रभावशाली सम्प्रेषण भी हिंसा है? लगता है यदा-कदा गाँधी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते, और अकर्म और अचिन्तन की झाड़ियों में दुवक कर वे कुछ क्षण साँस लेते, और फिर शक्ति बटोर कर अगला रास्ता खोजते। अखबारी कतरनें इकट्ठी करने का जो काम उन्होंने हाथ में लिया, वह हो सकता है माला जपने का सांसारिक पर्याय रहा हो।

कतरन वाला खण्ड दिसम्बर १९४३ में समाप्त हुआ, जब कस्तूरबा की अन्तिम बीमारी शुरू हुई। दिसम्बर से फरवरी तक आगा खाँ महल पर वा की बीमारी हावी रही, और सभी सामान्य गतिविधियाँ ठप्प हो गईं। फरवरी में बा की मृत्यु के बाद जीवन सामान्य होने ही लगा था कि खुद गाँधीजी मलेरिया से बीमार पड़ गए। इन घटनाओं से वे टूट गए। बीमारियों का यह अध्याय चल ही रहा था कि सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया।

सुबह शाम के परिसंवाद

सुबह शाम घूमते समय महात्मा गाँधी एक चलता फिरता परि-संवाद संचालित करते थे। प्रार्थना और मौन की तरह यह भी उनके जीवन का एक नियमित कार्यक्रम था।

चर्चा अक्सर हिंसा अहिंसा और भारत के भावी राज्यतंत्र के बारे में होती। १९३९ में उनका जो आग्रह था कि हिन्दुस्तान बहादुर की अहिंसा सीखे, उसे वे स्थगित कर चुके थे। कहते, "मैंने देखा है कि सारे देश को मैं बहादुर की अहिंसा नहीं सिखा सकूंगा। तो इस दुर्बल की अहिंसा को मुझे आजमाना है। दुर्बल की अहिंसा कुछ फल लाए तो दुर्बल प्रजा के हाथ में अपनी रक्षा के लिए एक साधन आ जाता है।"

यह अहिंसा कैसी थी ? क्या आरम्भ से ही देश दुर्बल की अहिंसा नहीं आजमा रहा था ?

दुर्बल की अहिंसा की कुछ नई संभावनाएँ गाँधीजी ने आगा खाँ महल में स्वीकार कीं। जैसे वे कहने लगे कि अगर आम जनता किसी अपमान को बर्दाश्त न कर सके, और उससे बचने का कोई दूसरा साधन न हो तो वह मर जाए। हाराकिरी का कोई अहिंसक संस्करण शायद वे हिन्दुस्तान में आजमाना चाहते हों। जब बंगाल में अकाल पड़ा, तब भी गाँधीजी सोचने लगे कि अगर हजारों लोग उपवास करें, तो एक तो अनाज की स्थिति सुधर सकती है और दूसरे सरकार पर इसका असर पड़ सकता है।

१९४२ के आन्दोलन में जो हिंसा हुई, उससे तो गाँधीजी असहमत ही थे। लेकिन रेल, तार, और टेलीफोन तोड़ना फोड़ना उनके सत्याग्रह में विलकुल वर्जित नहीं था। अपने उपवास के दिनों में वे कहने लगे कि मैं अगर तोड़फोड़ को सत्याग्रह का अंग बनाता, तो वह विलकुल अलग ढंग का आंदोलन होता। जो लोग सत्याग्रह करते, वे खुले आम ऐलान करते कि अमुक समय हम तार काटने आएँगे। आप अपनी पुलिस और फौज बुला लें। एक एक दो दो आदमी वहाँ जाते, और गोली खाकर प्राण दे देते। छिपी नीति को इसमें कोई स्थान नहीं होता।

लेकिन गाँधीजी इससे भी कुछ आगे गये। उनकी राय थी कि दुर्वल की हिंसा भी एक माने में अहिंसा ही है, और इस कारण वे १९४२ की उथलपुथल को मुख्यत: अहिंसक मानने लगे थे। उनका तर्क कुछ इस प्रकार था: अगर एक हजार हथियारवन्द सिपाहियों का मुकाबिला सिर्फ दस सिपाही करें, तो वे लगभग अहिंसक सिपाही हैं, क्योंकि उनमें हिंसा की क्षमता ही कितनी है? अगर बलात्कार के समय कोई लड़की अपने दाँतों, नाखूनों या छुरे का उपयोग करे तो वह लगभग अहिंसक है। उसकी हिंसा बिल्ली के खिलाफ चूहे की हिंसा है। इन सब उदाहरणों में अहिंसा की कसौटी यह है कि आक्रान्त व्यक्ति कभी अपने हमलावर को पराजित करने में सफल नहीं होता, क्योंकि वह दुर्बल है। दूसरे उसकी हिंसा योजनावद्ध नहीं है, बल्कि आकस्मिक है। पोलेण्ड की फौज ने हिटलर की अपार सैनिक शक्ति का जो मुकाबिला किया उसे भी गाँधी लगभग अहिंसक मानते थे।

इस तर्क शृंखला के अनुसार १९४२ की घटनाएँ भी लगभग अहिंसक थीं, क्योंकि शासन का दमन और अत्याचार इतना पाशविक था कि उसके सामने जनता की छुटपुट हिंसा बिलकुल असहाय और नगण्य प्रतीत होती थी। फिर यह हिंसा भी इसलिए पैदा हुई कि सरकार ने अहिंसक युद्ध के सभी जनरलों को कैदखाने में डाल दिया।

अहिंसा के दर्शन में गाँधीजी ने एक परिवर्तन और किया। अब तक वे मानते थे कि हिंसा और अहिंसा दोनों साथ साथ नहीं चल सकते। लेकिन चौरी चौरा वाली अपनी राय उन्होंने १९४२ में कुछ बदल दी। वे कहने लगे कि दोनों एक हद तक साथ चल सकते हैं। छुटपुट हिंसा अगर होती रहे, तो यह जरूरी नहीं कि कांग्रेस अपना सत्याग्रह वापस ले ले। आखिर अहिंसा को अपनी श्रेष्ठता इस हिंसामय विश्व में ही सिद्ध करनी है। एक हिंसा द्वितीय महायुद्ध की है, जिसका भारत के पास कोई जवाब नहीं है। दूसरी हिंसा ब्रिटिश साम्राज्य की है। इन चुनौतियों के हिंसक प्रत्युत्तर अधिक सहज प्रतीत हो सकते हैं। लेकिन अहिंसा को इन सब वैकल्पिक उत्तरों से अधिक श्रेष्ठ अपने आपको बताना है।

हिंसा और अहिंसा के बीच सहयोग की भी कुछ संभावनाएँ गाँधी को स्वीकार थीं। जैसे अगर महायुद्ध में भारत चाहता है कि वह रूस और चीन की मदद करे, तो उसका एक तरीका यह है कि भारत अहिंसक तरीके से जापान का मुकाबिला करे, और रूस व चीन को संगीनों से लड़ने दे।

लेकिन अंग्रेज कैसे भरोसा करें कि अहिंसा द्वारा भारत जापान का मुकाबला कर सकेगा? उनके सामने ऐसा है क्या? ऐसी हालत में "मेरी अहिंसा मुझे मजबूर करती है कि मैं उन्हें (अंग्रेजी फौजों को) यहाँ रहने दूँ.......। जब सारा हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है, तब मैं अंग्रेजों से अहिंसा में विश्वास रख कर यहाँ से चले जाने को कैसे कह सकता हूँ?"

अर्थात् गाँधीजी के अनुसार भी ऐसे मौके आ सकते हैं, जबकि असिद्ध, बिना आजमाई हुई अहिंसा को हमें त्यागना पड़े, ताकि आजमाई हुई हिंसा अपना काम कर सके। मरने की तैयारी जब हिंसकों और अहिंसकों में समान हो, तब अहिंसा श्रेष्ठ सिद्ध हो सकती है। लेकिन आज तो हिंसकों में मरने की तैयारी बहुत अधिक है।

समय जब कम हो, और खतरा ज्यादा, तब प्रयोग नहीं किया जा सकता। जहाँ तक जापान का सवाल था, १९४२ अहिंसा के प्रयोग की घड़ी नहीं थी। लेकिन जहाँ तक ब्रिटिश साम्राज्य का सवाल था, १९४२ ही सत्याग्रह के प्रयोग की सर्वोच्च घड़ी थी।

१९४३ में उपवास शुरू करने के पहले गाँधी बताने लगे कि उनका देहावसान हो जाए, तो उनके शिष्य क्या करें। कहने लगे : "मैं अगर इस उपवास में लोप हो जाऊँ तो मैं अपना सन्देश अधूरा छोड़ जाऊँगा। सत्याग्रह के विज्ञान को मैं पूरी तरह देश के सामने अभी नहीं रख सका। मेरे बाद मेरा संदेश जनता तक कौन पहुँचाएगा?"

प्रयोग अधूरा है, और अविश्वसनीय है, यह गाँधीजी जानते हैं। मेडम क्यूरी की जीवनी पढ़ कर एक बार वे कहने लगे कि क्यूरी ने जब शोध शुरू की, तब उन्हें प्रयोगों से पता चला कि रेडियम जैसी कोई चीज होनी जरूर चाहिए। लेकिन वह उन्हें मिल नहीं रही थी। जगत उस समय कहता था, जब तक रेडियम तुम हमारे हाथ की हथेली पर नहीं रख देती, उसके लक्षणों गुणों का ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकतीं तब तक हम नहीं मानेंगे। वह काम करती गई, और आखिर रेडियम मिला।

गाँधी अपनी तुलना रेडियम की प्राप्ति के पहले वाली क्यूरी से करते थे। अहिंसा है, और जबर्दस्त है, यह वे जानते थे, लेकिन जगत की हथेली पर अहिंसा रखने की स्थिति में वे नहीं थे। उन्हें मालूम था जगत उनकी अहिंसा के प्रति शंका रखता है, और शंका रखने का उसे हक है। "मैं इस प्रयोग को पूरा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

३० जनवरी १९४८ तक भी गाँधी अपनी अहिंसा को रेडियम की तरह दुनिया की हथेली पर नहीं रख पाए, लेकिन इससे ज्यादा दुखद बात यह है कि उनके बाद उनकी प्रयोगशाला ही लगभग बन्द हो गई।

प्रयोग की आवश्यकता ही क्यों हुई? क्योंकि "हिन्दुस्तान का इतिहास देखो तो पता चलेगा कि हिंसा के मार्ग पर चल कर हिन्द ने

हमेशा मार खाई है।" और "दूसरे देशों में भी मेरी जो कीमत है, वह इसी कारण कि वे देखते हैं कि मेरे पास कुछ नई चीज है। वे हमारी ओर आँख लगा कर बैठे हैं।"

जो स्थिति अहिंसा की थी, वही चर्खे की भी। दोनों पर गाँधीजी की अटूट आस्था थी, लेकिन दोनों का प्रयोग अधूरा था। आगा खाँ महल में एक दिन उन्होंने कहा कि गीता से भी चर्खा ज्यादा जरूरी है, क्योंकि चर्खा अनासक्ति है। चर्खे से स्वराज आएगा, यह परिणाम इतना सुदूरस्थ है कि उसमें दृढ़ विश्वास रखना अनासक्ति है, जैसे राम नाम में श्रद्धा रखना अनासक्ति है।

लेकिन गाँधी चर्खे को रामनाम से विज्ञान के स्तर पर ला रहे थे, हालाँकि यहाँ भी वे चर्खे को रेडियम की तरह जगत की हथेली पर नहीं रख सके। कहते : "चर्खे के द्वारा कल्याण हो सकता है, यह जगत के सामने रख सकूँ, इस हद तक सिद्ध नहीं कर पाया।" फिर भी अपनी आंशिक सफलता पर उन्हें विश्वास था : "मैं कहता हूँ कि तीस करोड़ लोग पन्द्रह मिनिट भी काता और वुना करें, तो हिन्दुस्तान को करीब करीव मुफ्त में कपड़ा मिल सकता है। ऐसा करें तो स्वराज आज हाथ में है।"

लेकिन अन्य अवसरों पर गाँधीजी ने स्वीकार किया कि चर्खा भारत की बीमारियों की एकमात्र रामबाण दवा नहीं है। चर्खे के साथ ग्रामोद्योग और जमीन का प्रश्न भी है। वे हिसाब लगा कर जानना चाहते थे कि बिना मशीन की सहायता के यदि आदमी केवल शारीरिक श्रम और पशु श्रम के वल पर काम करे, तो इतनी पैदावार हो सकती है या नहीं कि मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ पूरी हो सकें।

गाँधीजी की श्रद्धा थी कि हाथ की मेहनत से मनुष्य खुशहाल हो सकता है। लेकिन अगर यह सिद्ध हो जाए कि उनकी कल्पना 'मूर्खता-पूर्ण' है, तो वे अपनी भूल स्वीकार करने के लिए भी प्रस्तुत थे। हाँ, तर्क वितर्क द्वारा वे अपनी श्रद्धा पर तब तक आँच नहीं आने देना चाहते

थे, जब तक कि वह एकदम गलत साबित न हो जाए। लेकिन उन्होंने कहा : जमीन का प्रश्न कैसे हल होगा, यह मैं पूरी तरह से आज जानता नहीं हूँ।

आगा खाँ महल की चर्चाओं से लगता है कि गाँधीजी के दिमाग में शासनमुक्त समाज का कोई अराजकवादी स्वप्न नहीं था। प्यारेलाल से उन्होंने कहा कि आदर्श समाज में शासन तो रहेगा, लेकिन वह ऋषियों की हुकूमत होगी। इन ऋषियों के हाथ में जो दण्डसत्ता होगी, वह लोगों को चुभेगी नहीं, जैसे परिवार में पिता की सत्ता बच्चों को नहीं चुभती। सत्ता भी फूल जैसी हो सकती है, जिसका दबाव किसी पर पड़े ही नहीं।

जेल में काफी बहस कार्ल मार्क्स के आसपास घूमती। गाँधीजी ने मार्क्स पढ़ा लेकिन वे सहमत नहीं हुए। मार्क्स का आर्थिक विश्लेषण, द्वन्द्ववाद, भौतिकवाद उन्हें नहीं जँचा। ("प्रकृति और पुरुष—दोनों अनादि हैं। प्रकृति पुरुष के विचारों को बनाती है, यह मैं नहीं मानता") प्यारेलाल ने उनसे कहा कि आप भी अपने दर्शन पर एक वृहत् पुस्तक लिख डालिए। इस पर पहले तो गाँधीजी बोले कि पुस्तक मेरे मस्तिष्क में पड़ी है, लेकिन यहाँ मुश्किल यह है कि मार्क्स भी मैं हूँ, और लेनिन भी मैं हूँ। लेकिन कुछ ही क्षण बाद गाँधीजी ने स्वीकार किया उनकी ज्ञानेन्द्रिय अनिश्चित है। मौका आने पर छठी ज्ञानेन्द्रिय जग उठती है, और बाद में फिर सो जाती है। कहने लगे कि दर्शन लिखना मेरी शक्ति से बाहर है। "मैं स्मृतिकार नहीं हूँ। कुछ प्रेरणा हुई तो कह दिया। जब तक परिस्थिति मेरे सामने आकर खड़ी न हो जाए, मैं निश्चय नहीं कर सकता कि क्या करूँगा। तो मैं स्मृति कैसे लिखूँ?"

गाँधी मार्क्स के बजाय अन्त तक रस्किन के ही भक्त रहे।

फिर भी जैसे अपने प्रयोग की मौलिकता का भान गाँधीजी को था, वैसे ही रूस के प्रयोग की नूतनता भी वे पहचानते थे। एक बार

वे घूमते समय बोले, "दूसरी ओर अभी रूस है। उसके पास भली बुरी, कैसी ही हो, कुछ नई चीज है। अगर रूस आज मिट जावे, तो गरीबों के पास कौनसी आशा रह जाएगी ?....... अब मैं जवाहर-लाल की चिन्ता को समझ सकता हूँ। वह मुझसे कहता है, 'गरीबों के लिए तो दो ही चीज हैं, या तो तुम्हारा रास्ता या रूस का। तुम्हारा प्रयोग तो जब सफल होगा, तब देखेंगे, मगर रूस ने तो सफल कर दिखाया है।' हो सकता है मेरा तरीका सचमुच मेरी अपनी मूर्खता का ही चिन्ह हो।....अगर ऐसा हो तो भी मुझे फिकर नहीं। मैं इस बारे में बुद्धि चलाना ही नहीं चाहता। जो चीज बुद्धि से निकली नहीं, उसमें मैं बुद्धि को क्यों चलाऊँ? क्यों बुद्धि के प्रपंच में पड़ूँ ?"

सहिष्णु होते हुए भी गाँधी में सत्य का सामना करने की क्षमता थी। एक बार वे कहने लगे कि जगत के किसी भी हिस्से में मुसलमान इतने कट्टर नहीं हैं, जितने यहाँ। उनके सामने और कहीं भी हिन्दू धर्म की सी सहिष्णुता नहीं थी; मगर उस सहिष्णुता का यह अर्थ आए कि वे हिन्दुओं का देश छीनना चाहें तो हिन्दू कह सकते हैं कि इनके प्रति अब सहिष्णुता नहीं रहनी चाहिए। दूसरे देशों ने जो किया, वही हम भी करेंगे।

इस वार्तालाप के बहुत दिन बाद एक शाम पाकिस्तान के बारे में बोले, "मैंने कहा है कि जिसे मैं पाप समझता हूँ, उसमें हाँ कैसे करूँ। मगर तुम्हें लेना हो तो लो। तुम्हें कौन रोक सकता है।"

खिलाफत के दिनों में जो हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम हुई, उसका मर्म और रहस्य भी गाँधी ने इस दिन की बातचीत में प्रकट कर दिया। कहने लगे कि गो हत्या को मैं पाप मानता हूँ। मुसलमानों से मैंने कहा कि खिलाफत तुम्हारी गाय है: उसे मैं अपनी गाय मानता हूँ। तुम मेरी गाय को अपनी गाय मानो। एक साल तक यह चला भी। लाखों गायें बचीं।

खिलाफत के दिनों में हिन्दू मुसलमान इसलिए एक थे कि उनके उपचेतन में जो जातीय एवं सांस्कृतिक प्रतीक वसे हुए थे, वे संयोग से पास आ गए। खिलाफत के वाद कोई मुस्लिम–गाय कांग्रेस के हाथ लगी ही नहीं, इसलिए साम्प्रदायिक दंगे होने लगे।

प्रचलित मान्यताओं से गाँधी दवते नहीं थे। वे नहीं मानते थे कि डार्विन का सिद्धान्त सही है, और आदमी वन्दर से उपजा है। वे नहीं मानते थे कि शंकराचार्य ने वौद्ध धर्म का उन्मूलन किया। ("उसका अच्छे से अच्छा भाग उन्होंने लिया। आज जितना बौद्ध धर्म हिन्द में है, उतना न चीन में है, न जापान में, न वर्मा में, न लंका में। बुद्ध भगवान अगर आज आएँ तो कहेंगे कि बौद्ध धर्म का सत्व तो हिन्दुस्तान में ही है, वाकी सव तो भूसा है।") वे मानते थे कि भारत इसलिए गुलाम वना कि व्राह्मणों ने अपना व्राह्मणत्व खो दिया।

एक वार प्यारेलाल ने गाँधी से पूछा कि सत्याग्रही इतने जड़वत क्यों लगते हैं? गाँधी ने स्वीकार किया कि जड़वत तो वे लगते हैं। लेकिन वे वोले कि जब तक वे लोग मेरे अंकुश के नीचे रह कर काम करते हैं, तव तक उन्हें जड़वत लगना ही है। कारण यह कि सत्याग्रह का संचालक मैं रहा। मुझसे आगे उनमें से कोई कैसे जा सकता है? वे लोग अपनी बुद्धि चलाने लगें तो उनका राजाजी जैसा हाल होगा। गाँधीजी ने ऐसे कई लोगों की मिसाल दी जो उनके साथ रह कर निस्तेज लगते थे, लेकिन जो उनके पास आने के पहले या अलग होने के वाद तेजस्वी माने गए। कहने लगे कि मोतीलालजी जैसे भी जब तक मेरे साथ काम करते थे, अपनी नहीं चला सकते थे। लेकिन उनका विश्वास था कि उनकी मृत्यु के वाद उनके सारे शिष्य तेजवान दीख पड़ेंगे।

अपने साथियों की छोटी से छोटी खामी की ओर गाँधीजी का ध्यान था। उपवास के दौरान वातचीत में वे कहने लगे कि विदेशी व्रुश के वजाय मैं दतौन के इस्तेमाल की राय देता हूँ, मगर मेरे घर

में ही ब्रुश इस्तेमाल होता है। सुशीला और प्यारेलाल के पास ब्रुश है, और भूल नहीं करता तो महादेव का भी बिना ब्रुश के काम नहीं चलता था। इन लोगों के बक्स में शायद और विदेशी चीजें भी मिल जाएँगी, जैसे पेन हैं, घड़ी है, इत्यादि।......सो मेरा अपना ही घर फूटा है।]

गाँधी पुरुष को प्रकृति से स्वतंत्र भले ही मानते हों, लेकिन उन्हें मालूम था कि क्रान्ति की लहर जब आती है, तो उत्साहवश लोग ऐसी ऐसी कुर्बानी दे देते हैं, जो लहर न होने पर वे कभी नहीं देते। इस विषय में गाँधी ने १९२० के दशक में मोतीलाल नेहरू का उदाहरण दिया। बोले : "मोतीलालजी जैसे को भी लगा कि बस सच्ची साहबी त्याग में ही है। उन्हें लगता था कि अब आजादी आ रही है। मगर जब नहीं आई, और मैं अंकुश रखता ही गया, तब वे लोग कुछ पीछे भी गए। दूसरा आनन्द भवन बना और पहले से भी ज्यादा शानदार बना। उसमें जवाहरलाल भी शामिल हुआ। खादी तो रही, मगर खादी की आत्मा चली गई।"

क्रान्ति की ऐसी ही दूसरी लहर १९३० में गाँधी ने पैदा की थी, और इसी तरह १९३९ में वे शिकायत कर रहे थे कि कांग्रेस अपने आदर्शों से च्युत हो रही है।

१९४२ की स्थिति के बारे में गाँधी ने एक बार कहा कि भारत की मनोदशा बा जैसी हो रही है। बा अपनी गिरफ्तारी के बाद काफी हताश, अन्यमनस्क और रोगग्रस्त थीं। अनन्त काल तक चलने वाले युद्ध से कुछ ऊबी और चिढ़ीं भी वे थीं।

क्या भारत और गाँधी के सम्बन्ध लगभग बा और गाँधी के सम्बन्धों जैसे नहीं थे?

उपवास

अपनी गिरफ्तारी के डेढ़ महीने वाद, जब उन्हें अखबार मिलने शुरू हो गए, तब महात्मा गाँधी ने १९४२ के आन्दोलन के बारे में पहली प्रतिक्रिया व्यक्त की।

२३ सितम्बर १९४२ को भारत सरकार के गृह सचिव को एक पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा कि अगर सरकार मेरे अगले कदम का इन्तजार करती तो कोई आसमान नहीं फट जाता। जो खेदजनक विनाश हुआ, वह तो होता ही नहीं। काँग्रेस की नीति –सारे आरोपों के वावजूद– आज भी अहिंसक है। लेकिन नेताओं की गिरफ्तारी ने लोगों को गुस्से से पागल वना दिया और वे संयम खो वैठे हैं। इस विनाश के लिए काँग्रेस नहीं, बल्कि शासन जिम्मेदार है।

लेकिन दमन चलता रहा, और लोगों की पागल हिंसा भी। अफ़वाह उड़ने लगी कि शासन ने ५० हजार लोग मार डाले हैं। कौन जाने कितने मरे। शासन ने अहमदाबाद के नवजीवन प्रेस पर छापा मारा, और १९३३ से अव तक की हरिजन की सारी प्रतियाँ नष्ट कर दीं। राजाजी और सप्रू और श्यामाप्रसाद मुकर्जी को गाँधीजी से मिलने नहीं दिया। विद्रोहियों से वार्ता करके इस बार सरकार लार्ड अर्विन की तरह झमेले में नहीं फँसना चाहती थी। आखिर इंग्लैंड में प्रधान मंत्री वह आदमी था, जिसने एक नंगे फकीर को वाइसराय भवन की सीढ़ियाँ चढ़ते देख आँसू बहाए थे।

दिन गुजरते गए, और गाँधी ने अपने आपको एक अंधी गली में पाया, जहाँ अकर्म अपराध सा था, और कर्म की इजाजत नहीं थी। आखिर ३१ दिसम्बर १९४२ को गाँधीजी ने लार्ड लिनलिथगो को एक पत्र लिखा। पत्र मार्मिक और व्यक्तिगत था। उसमें लिखा था कि मेरे मन में आपके खिलाफ जो गुबार है, उसे जाहिर किए बगैर मैं नहीं रह सकता। मेरा ख्याल था कि हम दोनों अच्छे दोस्त हैं क्योंकि और किसी वाइसराय के साथ मेरा इतना निकट सम्पर्क नहीं रहा। लेकिन लगता है एक मौका ऐसा आया जब आपने मेरी ईमानदारी पर शक करना शुरू कर दिया। अगर आप मेरे दोस्त थे तो आपने मुझे बुलवा कर अपनी शंकाएँ प्रकट क्यों नहीं की, पूरे तथ्यों की जानकारी क्यों नहीं ली? मैं पाता हूँ कि सरकारी क्षेत्रों में जितने बयान मेरे विषय में दिए गए हैं, वे सब सच से कोसों दूर है। मैं इतना बुरा बन गया कि अपने मरते हुए मित्र, प्रोफेसर भंसाली से सम्पर्क तक की इजाजत मुझे नहीं दी गई।

अन्त में गाँधी ने कहा कि जेल में मैंने अपने आपको छः महीने दिए थे। वह अर्सा खत्म हो रहा है, और मेरा धैर्य भी। अब मैं उपवास शुरू करूँगा। आप मुझे यकीन दिला दीजिए कि मैं गलती पर था, तो मैं भूल सुधार कर लूँगा। यही उपवास टालने का एकमात्र रास्ता है।

इन दिनों महल का वातावरण भारी और अनिश्चित था। गाँधी सिर्फ कामकाज की बातें करते और प्रायः चुप रहते। वे एकाग्र और ध्यानावस्थित होकर अन्तरात्मा की आवाज सुनना चाहते थे, लेकिन अन्तरात्मा की ध्वनि स्पष्ट नहीं थी। प्यारेलाल और सरोजिनी नायडू और मीरा बहन ने काफी जबर्दस्त बहसें उनके साथ कीं। लेकिन उपवास के निश्चय से वे टस से मस नहीं हुए। एक बार बोले : "शायद हिंसा वाले सक्रिय हैं और अहिंसक लोग अपंग होकर बैठ गए। इसका प्रतिकार भी मैं उपवास द्वारा कर सकता हूँ।......मन में यह भी उठता है कि क्या मेरा जीवन कार्य समाप्त हो गया है? मैं देश की प्रगति

को रोक तो नहीं रहा ?......सोचता हूँ मेरे सन्देश की पूर्णाहुति में उपवास की आवश्यकता क्या नहीं है ? मुझे अब सत्याग्रह की एक सम्पूर्ण मिसाल देश के सामने रख कर अपना जीवन कार्य पूरा कर लेना चाहिए ?"

दूसरे दिन उपवास की बात चली तो गाँधीजी ने कहा कि बंगाल में लोग भूखों मर रहे हैं, यह क्या कम कारण है ? मेरे जैसा आदमी ऐसी परिस्थिति में आराम से बैठ कर कैसे खा सकता है ? कहने लगे कि और भी कारण है, लेकिन अभी नहीं बताऊँगा। किन्तु भुखमरी अकेली ही उपवास के लिए सबल कारण है।

१८ जनवरी १९४३ को वाइसराय का उत्तर गाँधी को मिला। लिखा था कांग्रेस की नीति से, और जिस हिंसा और अपराध को इस नीति ने जन्म दिया है, उससे मुझे बहुत ग्लानि हुई है। मैंने आपको अखबार भेजना शुरू किया उसके बाद मुझे विश्वास था कि समाचारों में वर्णित हिंसा से आपको धक्का लगेगा, और आप अपनी निन्दा जगजाहिर कर देंगे। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। कांग्रेस के आन्दोलन पर आपका असर कितना गजब का है, यह मैं जानता हूँ, लेकिन काश मैं यह महसूस कर सकता कि आप पर हिंसा की भारी जवाबदारी नहीं है।

वाइसराय का मतलब यह था कि यदि आप उपद्रवों की निन्दा नहीं करते, तो इसका अर्थ यह कि आप उपद्रवों के साथ हैं। आप कहें और हिंसा न रुके, यह कहीं हो सकता है ?

गाँधीजी ने लिखा था कि आप मुझे अपनी गलती का यकीन दिला दें, तो मैं भूल सुधार लूँगा। वाइसराय ने कहा कि इसका अर्थ शायद यह है आप अपने कदम वापस लेना चाहते हैं, और अगस्त १९४२ की नीति से स्वयं को पृथक करना चाहते हैं। यदि ऐसा हो तो मुझे तुरन्त लिखिये, मैं तुरंत विचार करूँगा। अगर मैंने गलत समझा हो, तो आप अपने ठोस प्रस्ताव मुझे भेजिये।

इस पत्र के उत्तर में गाँधीजी ने १९ जनवरी को लिखा कि आपने जो अर्थ लगाया है वह सही नहीं है। अगर इस पत्र व्यवहार का कोई नतीजा नहीं निकला तो मैं अवश्य उपवास करूँगा। अगर मुझे अपनी भूल का विश्वास हो जाए, तो मैं व्यक्तिशः खुले आम स्वीकार कर लूँगा, और मैं उसे सुधारूँगा। लेकिन अगर आप चाहते हैं कि कांग्रेस की ओर से कोई प्रस्ताव रखूँ तो आप कार्य समिति के सदस्यों के बीच मुझे भेज दीजिए। बेशक मैं ९ अगस्त के बाद की घटनाओं की निन्दा करता हूँ। लेकिन क्या मैंने उनका सारा दोष भारत सरकार के मत्थे नहीं मढ़ा है? इस समय अपने कदम वापस लेने का कर्तव्य सरकार का है, क्योंकि उसी ने हिंसा उपजाई है।

वाइसराय और गाँधी दोनों अलग अलग दृष्टिकोणों से बात कर रहे थे, जिनका मिलन संभव नहीं था। २५ जनवरी को लिनलिथगो ने साफ साफ शब्दों में कहा कि अगर ९ अगस्त के प्रस्ताव को आप रद्द करते हों तो मैं मामले पर आगे विचार कर सकता हूँ।

२९ जनवरी को गाँधीजी ने वाइसराय को सूचित किया कि सामर्थ्य के अनुसार उपवास के सत्याग्रही कायदे से मैं ९ फरवरी की सुबह नाश्ते के बाद अपना २१ दिन का उपवास आरम्भ करूँगा। वह २ मार्च की सुबह खत्म होगा। मेरा इरादा आमरण अनशन का नहीं बल्कि ईश्वर ने चाहा तो जीवित रहने का है। सरकार यदि राहत दे तो उपवास पहले भी खत्म हो सकता है।

इन पत्रों में गाँधीजी ने उपवास के दो कारण बताए। एक तो यह कि ९ अगस्त के बाद सरकार ने जुल्म का राज शुरू कर दिया है। दाँत के बदले दाँत सरकार नहीं तोड़ रही है। वह एक के बदले दस हजार दाँत तोड़ रही है। यह हिंसा विराटाकार है। इसके साथ लाखों लोगों के दुख दर्द की भी याद कीजिए जो भुखमरी के कारण तड़प रहे हैं। अगर सच्ची राष्ट्रीय सरकार देश में होती तो यह भुखमरी कम हो सकती थी।

गाँधीजी ने वाइसराय को सूचित किया कि पहले मैं पानी के साथ नमक आदि डाल कर पीता था। आजकल मेरा शरीर पानी स्वीकार नहीं करता। अत: इस वार मैं पानी में फलों का रस मिलाऊँगा, ताकि पानी पेय बन सके।

इन दिनों खालिस पानी गाँधी से पिया नहीं जाता था। पीते तो मतली होने लगती। मीरा बहन को वे वताने लगे कि जब उपवास में पानी पीना असंभव होगा तब थोड़ा रस डालूँगा। इस रस का उद्देश्य शरीर को पोषण देना नहीं होगा, वल्कि सिर्फ पानी को पीने योग्य बनाना होगा। इतना कम से कम रस डाला जाएगा कि वह पोषण न दे, बस जल को पेय बना दे।

उपवास की प्रस्तावित तारीख के चार दिन पहले वाइसराय ने लिखा कि ८ अगस्त के प्रस्ताव में कांग्रेस ने जिस ढंग से आन्दोलन घोषित किया, और आपको अपना नेता वनाया और नेतृत्व की गिरफ्तारी के बाद हर आदमी को अपने तईं विद्रोह जारी रखने की छूट दी, उससे यह स्पष्ट है कि आप और आपके साथी हिंसा की उम्मीद करते थे और हिंसा को क्षमा देने को तैयार थे। हिंसा की बहुत पहले योजना बनाई जा चुकी थी, जबकि गिरफ्तारियाँ हुई भी नहीं थीं। मेरे पास जानकारी है कि तोड़फोड़ का काम कांग्रेस महासमिति के नाम पर जारी गुप्त आदेशों के अंतर्गत हो रहा है, और प्रसिद्ध कांग्रेसी उसमें भाग ले रहे हैं। आगे पीछे आपको इन आरोपों का मुकावला करना होगा और अपनी सफाई देनी होगी। लेकिन इस दौरान यदि आप उपवास द्वारा आसान रास्ता खोजना चाहें, तो फैसला आपके खिलाफ ही होगा। क्या आप चाहते हैं कि इस देश की स्थापित सरकार उपद्रवी और क्रान्तिवादी आन्दोलनों को सिर उठाते देखती रहे, और कुछ न करे? आरोप तो सरकार पर यह लगाया जा सकता है कि हमने आपको और कांग्रेसी नेताओं को पहले गिरफ्तार क्यों नहीं किया। लेकिन हमने जरूरत से ज्यादा धैर्य रखा। इन सब वातों के

बावजूद आप उपवास करना चाहें तो जिम्मेदारी आपकी है। लेकिन राजनैतिक लक्ष्यों के लिए किया गया उपवास मैं हिंसा और ब्लैकमेल मानता हूँ, जिसका कोई नैतिक औचित्य नहीं है। आपके पुराने लेखन से भी मेरी राय की पुष्टि होती है।

७ फरवरी को यह पत्र गाँधीजी को मिला, और उसी दिन उन्होंने उत्तर लिखा। उन्होंने कहा कि कांग्रेस के खिलाफ आपने जो आरोप लगाए हैं, उनकी जाँच न्याय की अंग्रेजी कसौटियों के अनुसार करवाइए। आपके सारे आरोप निराधार हैं। पहले उनका सबूत दीजिए। गाँधीजी ने कहा कि आपसे न्याय नहीं मिल रहा, इसलिए उपवास द्वारा मैं सर्वोच्च न्यायालय से न्याय माँग रहा हूँ। अगर मैं जीवित नहीं बचा, तो मैं न्याय के उस सिंहासन के सामने अपने बेगुनाह होने का विश्वास लेकर जाऊँगा, और भावी पीढ़ी आपके और मेरे बीच फैसला करेगी।

८ फरवरी को सर रिचर्ड टाटनहम ने अपने पत्र में गाँधीजी को सूचित किया कि यदि आपने इरादा नहीं बदला, तो उपवास की अवधि के लिए और उसी के खातिर सरकार आपको रिहा कर देगी। इस अवधि में आप चाहेंगे तो बाहर जा सकेंगे, और शासन को आशा है आप अपनी व्यवस्था आगा खाँ महल से अलग कहीं कर सकेंगे।

गाँधीजी ने इस अस्थायी रिहाई से इंकार कर दिया। उन्होंने लिखा कि मेरा उपवास मुक्त आदमी के रूप में सोचा ही नहीं गया है। इसलिए अगर मुझे रिहा किया गया तो उपवास रद्द कर दूँगा। तब मैं विचार करूँगा कि आगे क्या करूँ।

इस पर सर रिचर्ड ने गाँधीजी को सूचित किया कि आप अपनी जिम्मेदारी पर नजरबन्दी में उपवास कर सकते हैं। लेकिन अपने चिकित्सक खुद आप रख सकेंगे, और सरकार की इजाजत से आप मित्रों से मिल सकेंगे।

उपवास के साथ ही भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति जारी करके अपनी नीति को स्पष्ट किया। विज्ञप्ति में लिखा था कि मिस्टर गाँधी

ने सूचित किया है कि यदि उन्हें रिहा किया गया तो वे उपवास त्याग देंगे, और नहीं किया तो करेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि बिना शर्त रिहाई होने पर ही वे उपवास छोड़ेंगे। यह शर्त भारत सरकार मंजूर नहीं कर सकती।

विज्ञप्ति में कहा गया था कि तोड़फोड़ में जो हजारों लोग आज व्यस्त हैं, वे कांग्रेसी नहीं हैं तो और कौन हैं? मिस्टर गाँधी कहते हैं कि कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी से लोग पागल हो गए। कौन से लोग पागल हो गए, क्या गैर कांग्रेसी लोग पागल हो गए?

१० फरवरी को एक दिन के स्थगन के बाद गाँधीजी ने अपना उपवास शुरू किया। उस दिन सारा कार्यक्रम रोज की तरह चला। छोटी सी प्रार्थना नाश्ते के बाद हुई, फिर घूमना, समाधि पर फूल चढ़ाना, पढ़ना लिखना, कातना – सब ज्यों के त्यों हुए। सरकार को लिखा गया कि डॉ. एम. एम. गिल्डर, डॉ. विधानचन्द्र राय और डॉ. जीवराज मेहता को भेज दें। मालिश और प्राकृतिक चिकित्सा के लिए पूना के डॉ. दिनशा मेहता को बुलवाया गया।

दूसरे दिन डॉ. गिल्डर यरवडा जेल से आ गए। तीसरे दिन गाँधी समाधि पर फूल चढ़ाने नहीं जा सके। सारा देश उपवास की खबर से दहल गया। गाँधीजी की रिहाई के लिए पहल शुरू हो गई, हालाँकि वे कहते थे कि उपवास का लक्ष्य रिहाई नहीं, न्याय है। प्रतिदिन दो पौण्ड उनका वजन घटने लगा। चौथे दिन उन्हें पानी पीने से मतली आने लगी : अभी वे सादा पानी ही पी रहे थे।

मुलाकातों के बारे में भंडारी ने एक चार सूत्रीय नियमावली दी : (१) किससे मिलना है, यह फैसला गाँधीजी को करना होगा। (२) वे चाहे जिस विषय पर बात कर सकते हैं। (३) मुलाकात के समय एक अफसर हाजिर होगा। (४) मुलाकात की रिपोर्ट अखबारों में नहीं छप सकेगी।

गाँधीजी ने किसी को बुलाने से इंकार कर दिया। उन्होंने लिखा यह वोझ मुझ पर मत डालिए। सरकार मुझसे विना पूछे इजाजत दे। मैं किसी भी मित्र को मिलने से रोकना नहीं चाहूँगा। दूसरे उन्होंने लिखा कि अगर वहस की छूट दे रहे हैं, तो वहस की रिपोर्ट छपनी भी चाहिए। तीसरे उन्होंने सुझाया कि जो लोग उपवास में मेरी सेवा करते रहे हैं, उन्हें मेरे साथ रहने की इजाजत दी जाएं।

१३ फरवरी को सरकार ने एक पुस्तिका प्रकाशित कर दी, जिसका शीर्षक था : कांग्रेस रिसपौंसिबिलिटी फार द डिस्टर्वन्सेस : १९४२-४३। इसमें गाँधीजी के ढेर सारे उद्धरण देकर सिद्ध किया गया था कि सारे उपद्रव कांग्रेस ने ही भड़काए हैं। शासन को लगभग निश्चय हो गया था कि २१ दिन के उपवास से "मिस्टर गाँधी" बचेंगे नहीं। अतः अपनी स्थिति का वचाव करने के लिए उसे यही क्षण सर्वश्रेष्ठ लगा। जैसा कि स्वयं गाँधीजी ने बाद में कहा यह एक सरकारी वकील का आरोप पत्र था, लेकिन इस्तगासे का वकील इस समय पुलिस वाला भी था और जेलर भी। उसने अपने मुजरिम को गिरफ्तार करके उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया, और अभियुक्त के पीठ पीछे अपना दावा पेश करना शुरू किया।

१४ फरवरी को नींबू, नमक या सोडा डाल कर गाँधीजी ने पानी पीने की कोशिश की। १५ को श्रीमती महादेवी देसाई, उनका पुत्र नारायण और कनु गाँधी महल में आ गए। पहली वार उन्होंने समाधि के दर्शन किए। रात को विधानचन्द्र राय आए।

१६ फरवरी को गाँधी इतने दुर्बल थे कि पानी का गिलास पकड़ना कठिन था। उन्हें पहियेदार खाट पर सुलाया गया, जो चाभी घुमाने से ऊपर नीचे हो सकती थी। स्वास्थ्य की विज्ञप्तियाँ रोज निकलती ही थीं। अव उनके पास छः डाक्टर थे : सर्जन जनरल कैंडी, डॉ. बी. सी. राय, डॉ. गिल्डर, कर्नल भंडारी, कर्नल शाह और डॉ. नैयर। लेकिन दिन रात की सेवा डॉ. नैयर और डॉ. गिल्डर के ही जिम्मे थी।

१७ फरवरी को वाइसराय की कार्यकारिणी के हिन्दुस्तानी सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। वे थे, होमी मोदी, एन. आर. सरकार और एम. एस. अणे। लिनलिथगो के साथ उनका मतभेद हो गया : वे सब इस राय के थे कि गाँधी को रिहा कर दिया जाए।

पहले हफ्तों में तीस व्यक्तियों ने गाँधी से मुलाकात की। लेकिन १८ फरवरी से उनकी हालत और ज्यादा बिगड़ने लगी। हृदय दुर्बल पड़ गया। पेशाब कम आने लगा। बम्बई सरकार के सलाहकार ब्रिस्टो पूना आ गए। शायद वे यह तय करने आए थे कि गाँधी की मृत्यु हो जाए तो उनके शव को किस रास्ते श्मशान ले जाया जाए। पेट और सिर और सारा शरीर बेचैनी से भर गए। बदन में यूरेमिया का जहर बढ़ने लगा और गुर्दों का काम करना कठिन हो गया। पानी पी नहीं सकते थे, और फलों का रस अभी ले नहीं रहे थे।

१९ फरवरी को नेताओं का एक निर्दलीय सम्मेलन हुआ, जिसमें जिन्ना को छोड़कर हर वर्ग के लोग आए, और सबने गाँधीजी की रिहाई की माँग की। लेकिन सरकार अटल थी। उसने राष्ट्रपति रूजवेल्ट के विशेष दूत विलियम फिलिप्स को भी आगा खाँ महल नहीं जाने दिया। गाँधी १४ पौण्ड वजन खो चुके थे, और अब उन्हें तौला भी नहीं जा सकता था।

२० फरवरी को सर्जन जनरल कैंडी ने कहा कि गाँधीजी को एनीमा में ग्लूकोज़ क्यों न दे दिया जाए। लेकिन गिल्डर और बी. सी. राय और सुशीला नैयर ने कहा कि बापू के साथ ऐसी धोखाधड़ी नहीं की जा सकती। ऐसा किया गया तो शायद वे मर जाएँ। आखिर कैंडी ने विचार त्याग दिया। लेकिन उस दिन कैंडी गाँधीजी के कमरे में गए और रो पड़े : "मिस्टर गाँधी, एक डाक्टर की हैसियत से मुझे आपसे कहना चाहिए कि आपकी उपवास करने की शक्ति समाप्त हो गई है।"

२१ फरवरी १९४३ को गाँधी शायद मर जाते। वे लेटे लेटे नली से पानी चूस रहे थे, और इसकी भी उनमें शक्ति नहीं थी। एक दिन पहले उन्होंने दिन भर में ४० औन्स पानी पिया था, जिसमें दो औन्स नींबू का रस था। साँस में यूरेमिया की बू आ रही थी। दिन भर चुप-चाप पड़े रहे। शाम को चार बजे हालत एकदम बिगड़ी। मतली आई, और बेचैनी से छटपटाने और हाथ पैर पटकने लगे। नाड़ी गायब थी। पानी पिया नहीं जा रहा था। डा. नैयर ने पूछा; "बापू वह समय नहीं आ गया कि जब पानी में मौसम्बी का रस डाल कर आपको दिया जाए?" बहुत देर बाद धीरे से सिर हिला कर उन्होंने हाँ कहा। दो औन्स रस के साथ दो औन्स पानी उन्होंने पिया। उनके प्राण लौट आए। बेचैनी कम हुई, और बन्द आँखें खोल दीं। दिन भर में १५-१६ औन्स रस और तिगुना पानी उन्होंने पिया।

इस आठ नौ औन्स रस से बापू की दशा सुधरी। खून में पेशाब मिलना बन्द हुआ। फिर भी कुछ भी हो सकता था। सरकार ने चन्दन की लकड़ी चिता के लिए तैयार रखी थी, और पुलिस व सेना का पूरा बन्दोबस्त था।

२४ फरवरी को गाँधीजी बेहतर थे। उनका वजन भी अब कम नहीं हो रहा था। डाक्टर लोग हैरत में थे। मौसम्बी के रस की मात्रा गाँधीजी ने और भी कम कर दी। लेकिन अंग्रेजपरस्त अखबारों में इस मौसम्बी के रस को लेकर अफवाहें और चुटकुले चलने लगे। कैंडी बहुत निराश हुए कि बापू ने रस की मात्रा कम क्यों की? क्या वे मौत के कगार पर ही खड़े रहना चाहते हैं? उन्हें बताया गया कि इसका ताल्लुक मौत और जिन्दगी से नहीं है। गाँधीजी ने खूराक का अनशन किया है, पानी का नहीं। इसलिए वे उतना ही रस लेंगे, जितना पानी पीने के लिए जरूरी हो। लेकिन वे उसे खूराक नहीं बनने देंगे।

इन दिनों राजाजी, भूलाभाई देसाई, के. एम. मुंशी, एम. एस. अणे, रथीन्द्रनाथ ठाकुर (गुरुदेव के पुत्र), अम्बालाल साराभाई,

शंकरलाल बैंकर, रामेश्वरदास बिड़ला, वैकुंठलाल मेहता, ठक्कर बापा, श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी, आदि गाँधीजी से मिलने आए। उनके पुत्र भी बार-बार सपरिवार आए।

२ मार्च को आगा खाँ महल के दरवाज़े आखिरी बार बन्द हो गए, और ३ मार्च की सुबह भजन और प्रार्थना के बीच बापू ने अपना उपवास तोड़ा। वे सचमुच मौत के मुँह से लौट आए।

उपवास के बाद भी सरकार और गाँधी के बीच ईमान की लड़ाई चलती रही। मार्च १९४३ में प्यारेलाल ने एक पत्र लिखकर "कांग्रेस रिसपौंसिबिलिटी" वाली पुस्तिका की प्रति माँगी। अप्रेल में वह गाँधीजी को मिली, और गाँधी उसका लम्बा जवाब तैयार करने में व्यस्त हो गए। मई में उन्होंने सर रेजिनाल्ड मैक्सवेल के विधान सभा में दिए गए भाषण का लम्बा प्रतिवाद लिखा। मई में ही उन्होंने लॉर्ड सेमुअल को पत्र लिखा, जिसमें हाउस ऑफ़ लॉर्डस् में दिए गए एक भाषण का जवाब था। यह पत्र व्यवहार जुलाई १९४५ तक चलता रहा, जबकि गाँधी को रिहा हुए एक साल हो चुका था। १९४४ में जब लार्ड वैवल वाइसराय बने तो गाँधी ने उन्हें भी तीन पत्र लिखे, और लिनलिथगो वाली तर्क श्रृंखला जारी रखी। रिहाई के एक महीने बाद जुहू में गाँधीजी ने शासन से अपना सारा पत्र व्यवहार साइक्लोस्टाइल करवाया, और उसकी दोसौ प्रतियाँ जून १९४४ में महत्वपूर्ण नेताओं को भेजीं। एक साहसी बम्बई के अखबार ने पूरा पत्र व्यवहार ज्यों का त्यों छाप दिया। १ मार्च १९४५ को यह पत्र व्यवहार नवजीवन ने पुस्तकाकार छापा। लिनलिथगो जब विदा होने लगे, तब गाँधीजी ने पत्र में लिखा (सितम्बर १९४२) कि जितने भी ऊँचे लोगों को जानने का मुझे सौभाग्य मिला है, उनमें से किसी ने मुझे इतना दुख नहीं पहुँचाया

जितना कि आपने। मुझे आशा है कि आप किसी दिन अपनी भारी भूल पहचानेंगे।

लेकिन उपवास का मुख्य द्वन्द्व क्या था, यह रेंजिनाल्ड मैक्सवेल और गाँधी के एक वाद-प्रतिवाद से स्पष्ट होता है।

मैक्सवैल ने केन्द्रीय विधान सभा में कहा :

"अपनी खुद की ओर से बोलते हुए मुझे स्वीकार करना चाहिए कि प्रतिद्वन्द्वी के मन में दया, मनुष्यता और वीरोचित्त भद्रता की जो भावनाएँ हैं, उनका उसी के खिलाफ दुरुपयोग करना शोभनीयता के पश्चिमी आदर्शों के खिलाफ है। साथ ही किसी शुद्ध सांसारिक लक्ष्य से जनता की भावनाओं को उभाड़ना, और इस हेतु जिन्दगी जैसी पवित्र धरोहर से खिलवाड़ करना भी गलत है।"

गाँधीजी ने इसके जवाब में कहा :

"अपने प्रतिद्वन्द्वी के मन में जो दया, मनुष्यता और वीरोचित भद्रता की भावनाएँ हैं उनका दुरुपयोग करना (इस शब्द को मैं कायम रखता हूँ) क्या शोभनीयता के पश्चिमी आदर्शों के खिलाफ है? कौनसा रास्ता श्रेष्ठ है,प्रतिद्वन्द्वी की चुपचाप या खुले आम हत्या करना, अथवा यह मानना कि वह एक भला आदमी है, और उसकी भली भावनाओं को उपवास आदि से जगाना? कौनसा रास्ता अच्छा है, उपवास से या आत्मदाह के किसी अन्य प्रकार से अपनी जिन्दगी के साथ खिलवाड़ करना, अथवा प्रतिद्वन्द्वी और उसके आश्रितों का सर्वनाश करते हुए अपनी जिन्दगी दाँव पर लगाना?"

कौन सा रास्ता अच्छा है? कौन जानता है! लेकिन रेंजिनाल्ड मैक्सवेल शिकायत कर रहे थे कि गाँधी ने अंग्रेजों के मर्म पर चोट की है, और गाँधी कह रहे थे कि मर्म पर न करें तो कहाँ करें?

अन्तिम बलिदान और रिहाई

९ अगस्त १९४२ को गाँधीजी की गिरफ्तारी के वाद कस्तूरबा का स्वास्थ्य लगातार ढुलमुल रहने लगा। उसी दिन शाम को वे बंबई की एक आम सभा में भाषण देने वाली थीं, इसलिए अन्देशे में गिरफ्तार कर ली गईं। आर्थर रोड जेल में पहुंची, तो उन्हें बुखार हो गया और दस्त लगने लगे। दो दिन बाद वे आगा खाँ महल पहुँचा दी गईं। और तव वे कुछ ठीकठाक हुईं। गाँधीजी के सार्वजनिक जीवन का तनाव अव उन्हें बहुत भारी पड़ रहा था, और वे डूब सी रही थीं। इस संघर्ष का क्या कभी अन्त होगा, दे सोचतीं? वापू लाखों लोगों को व्यर्थ क्यों जेल भेज रहे हैं? अंग्रेजों का विगड़ा क्या है, सब कुछ तो सामान्य चल रहा है? कस्तूरवा में अव भी पारिवारिकता शेष थी, जिससे वापू ने १९०६ में सन्यास ले लिया था।

सितम्बर में उन्हें दिल की बीमारी के कारण छाती का दर्द होने लगा। दवाओं से वह कुछ ठीक हो गया। लेकिन अक्टूबर में वे ज्यादा बीमार पड़ीं। मलेरिया या ब्रांको निमोनिया का बुखार उन्हें आ गया। महादेव देसाई की मौत ने सबका मन कमजोर कर दिया था। सुशीला नैयर ने आपत्कालीन दवाएँ मँगा कर रख लीं। बापू प्राय: आधी रात में चिन्ता करते कि बा सो रही हैं या नहीं। उनके मन में खटका पैदा हो गया। एक बार कहने भी लगे कि कहीं बा को भी न खोना पड़े। मन में तैयारी तो इसकी भी कर ली है, लेकिन खोना नहीं चाहता। किन्तु बा की जिन्दगी के अभी १६ माह शेष थे। इस बीच कई बार वे ढीली

पड़ीं और उठ खड़ी हुईं। अक्सर कहतीं कि इस महल से वाहर अब क्या जाना हो।

वा की अंतिम वीमारी २७ नवम्बर १९४३ से शुरू हुई। दूसरे ही दिन ग़ुसलखाने में उन्हें इतनी कमजोरी होने लगी, कि उन्हें सहारा देकर वाहर लाना पड़ा। तीन दिन वाद उनका दम फूल रहा था, और रात को आक्सीजन मँगाकर रखा गया ताकि हालत बिगड़ने पर काम आए। १ दिसम्बर को डॉ० गिल्डर और नैयर ने सरकार को पत्र लिखा कि वा को नियमित मुलाकात वाहर के लोगों की मिलनी चाहिए। वह दवा की तरह काम करेगी। लेकिन यह पत्र भेजा नहीं गया। २ दिसम्बर को डॉ. शाह ने (जो आगा खाँ के रिश्तेदार थे) आकर कहा कि उन्होंने कस्तूरवा की रिहाई के लिए सरकार को लिखा है। सरकार रिहाई के लिए तैयार तो थी, लेकिन उसे भय था कि अगर कस्तूरवा की हालत वहुत ज्यादा बिगड़ी, तो गाँधीजी को रिहा न करना वहुत क्रूर लगेगा, और उसकी वदनामी होगी। कस्तूरवा ऐसी रिहाई चाहती भी नहीं थी। जो भी हो सरकार ने रिहाई का प्रस्ताव कभी रखा ही नहीं।

४ दिसम्बर को वा इतनी कमजोर थीं कि उन्हें खाट पर ही दतौन करना पड़ा। दोपहर को स्पंज किया गया। एक वार वे इतनी घवरा गईं कि कहने लगीं : वस मैं अब चार-पाँच घंटे की मेहमान और हूँ। उस दिन कटेली ने उन लोगों की सूची माँगी, जिनसे वा मिलना चाहेंगी।

५ दिसम्वर को श्रीमती रामदास गाँधी मिलने आईं। सरकार ने रामदास और देवदास गाँधी को बीमारी का तार पहुँचाया था। ६ को देवदास आए। कभी बा को छाती में दर्द होता, कभी पेट में तकलीफ। दमे का दौरा था जिससे अनिद्रा थी। पुत्र और पुत्र वधु उनसे मिलने आते रहे। उनके लिए एक पहियेदार कुर्सी आई ताकि आ जा सकें। इस समय वा की सेवा में मनु गाँधी और सुशीला नैयर थे। कनु और

प्रभावती जयप्रकाशनारायण को बापू बुलवाना चाहते थे, लेकिन सरकार ने इंकार कर दिया था। मित्र और रिश्तेदार दिन प्रतिदिन आया करते। दिसम्बर के अंत में सरकार ने एक आया भेज दी। ११ जनवरी को आखिर प्रभावती भी आ गई। वा की तबीयत सुबह अच्छी रहती, तो शाम को बिगड़ जाती। मुलाकात के वक्त ठीक रहतीं, और बाद में परेशान हो जातीं। जनवरी के अंत तक उनके मन में ठीक होने की आशा नहीं बची।

दिसम्बर के अन्त में जब डॉ. भंडारी या डॉ. शाह आगा खाँ महल आते, तब कस्तूरबा उनसे आग्रह करतीं कि पूना के प्रकृति चिकित्सक डॉ. दिनशा मेहता को भेज दिया जाए। लेकिन उनकी बात डाक्टरों ने सुनी अनसुनी कर दी। शायद उन्हें लगा होगा कि यह कोई गंभीर माँग नहीं है। दिनशा डिग्रीधारी डाक्टर नहीं थे, इसलिए ढील हुई। फिर ये सरकारी डाक्टर समझे भी नहीं कि दिनशा मेहता इलाज के लिए नहीं बल्कि एनीमा, मालिश आदि के लिए बुलाए जा रहे हैं।

जो भी हो २७ जनवरी १९४४ को गाँधीजी ने भारत सरकार के गृह सचिव को चिट्ठी लिख कर कहा कि कस्तूरबा की बीमारी के सिलसिले में सरकार जो सहूलियतें दे रही है, उनमें शोभनीयता का एकदम अभाव है। कस्तूरबा का आग्रह है कि दिनशा मेहता को एवं किसी आयुर्वेदिक चिकित्सक को इलाज के लिए भेजा जाए। आप इतने दिन से किसी को भेज नहीं रहे हैं। कनु गाँधी को भेजने के बारे में आपने कोई भी जवाब नहीं दिया। मरीज की हालत बिगड़ती जा रही है। उसे रात में सेवा की जरूरत है। कनु एक आदर्श परिचारक है, क्योंकि वह सेवा कर सकता है, और भजन भी गा सकता है।

गाँधीजी ने कहा कि तुरन्त से तुरन्त इस मामले में राहत की आवश्यकता है।

लेकिन सरकार की मशीन फुर्ती से नहीं घूम सकती। ३१ जनवरी को गाँधीजी ने दूसरा पत्र लिखा : मेरे अत्यावश्यक पत्र का अब तक

कोई उत्तर नहीं है। परिचारकों की हालत खराब है। चार जने हैं, जो एक दिन छोड़ कर दो-दो जागते हैं। चारों दिन में भी काम करते हैं। मरीज व्यग्रता से पूछती है कि दिनशा कब आएँगे। क्या आप शीघ्रातिशीघ्र, हो सके तो कल तक, बता सकते हैं कि कनु गाँधी स्थायी रूप से आ सकता है या नहीं, दिनशा मेहता को भेजेंगे या नहीं, और मुलाकात के समय परिचारकों की संख्या पर लगी पाबन्दी हटाएँगे कि नहीं।

उसी दिन डॉ. गिल्डर और नैयर ने भी पत्र लिख कर सरकार से कहा कि डॉ. जीवराज मेहता और डॉ. विधानचन्द्र राय को तुरन्त इलाज के लिए भेजा जाए। उसी दिन बा को एनीमा, आक्सीजन और कोरामीन देना पड़ा।

१ फरवरी को कनु गाँधी को आगा खाँ के वन्दी शिविर में रहने के लिए दाखिल होने दिया गया। जीवराज मेहता भी देखने आए। डॉ. नैयर ने अपनी डायरी में लिखा: उन्हें (बा को) पाँच मिनिट भी अब अकेले नहीं छोड़ा जा सकता।

गाँधीजी सरकार के बर्ताव से बहुत चिढ़ रहे थे। ३ फरवरी को एक पत्र में उन्होंने लिखा कि कस्तूरबा मुझसे बार-बार कहती है कि मैं वैद्य को और डॉ. दिनशा को बुलाऊँ। जब मरीज की जिन्दगी अधर में लटक रही है, तब यह विलम्ब मुझे समझ में ही नहीं आता। आखिर मरीज के लिए चिकित्सा भी तो राज्य के सर्वोच्च कामों की तरह महत्वपूर्ण है।

उस दिन सरकार ने जवाब दिया कि (१) कनु गाँधी महल में रह सकते हैं। (२) बाहरी डाक्टरों को प्रवेश की इजाजत नहीं है, जब तक यह चिकित्सा की दृष्टि से अत्यावश्यक न हो। (३) दिनशा मेहता बुलाए जाएँ या नहीं, यह फैसला सरकारी डाक्टर को करना है। (३) मुलाकातों के समय कितने लोग मरीज की सार सँभाल के लिए जरूरी हैं, यह जलों के इन्स्पेक्टर जनरल शुद्ध डाक्टरी दृष्टि से तय करेंगे।

स्पष्ट ही शासन की पहली चिन्ता यह थी कि कस्तूरबा की बीमारी के बहाने कहीं बाहर की दुनिया से गाँधी का सम्पर्क न हो जाए।

आखिर ५ फरवरी से दिनशा मेहता का आना शुरू हुआ। लेकिन किच-किच जारी रही। डॉ. मेहता को थोड़े समय ही रहने की इजाजत थी, और शुरू में कहा गया कि वे आएँ तो डाक्टरों के सिवा कोई हाजिर न रहे। गाँधी इससे बहुत उत्तेजित हो गए। धीरे-धीरे ये बन्दिशें भी ढीली हुईं।

लेकिन वैद्य नहीं आया। बस ३१ जनवरी को सरकार ने पूछ लिया कि क्या कस्तूरबा की दृष्टि में कोई विशेष वैद्य है। गाँधीजी ने सुझाव दिया कि लाहौर के पंडित शिव शर्मा को बुलवा लिया जाए।

वैद्य बुलवाने की बा की इच्छा के बारे में रोज मौखिक चर्चा होती। मसलन, ९ फरवरी को बापू ने डॉ. शाह से कहा। डा. शाह ने इंस्पेक्टर जनरल भंडारी से कहा। भंडारी ने एच. आय्यंगर से कहा जो बम्बई सरकार के गृह सचिव थे। आय्यंगर ने दिल्ली फोन करने की बात कही। कोई नतीजा नहीं निकला। उधर बा के पैर पर सूजन आ गई और रात उन्हें नींद नहीं आती।

१२ फरवरी को आठ हफ्ते के विलम्ब से आखिर शिव शर्मा आ गए। गाँधीजी ने लिख कर दिया कि वैद्य के इलाज की जिम्मेदारी मेरी है। हो सकता है कि मैं खुद ही वैद्य का इलाज स्वीकार न करूँ और वर्तमान चिकित्सा जारी रहने दूँ। आते ही वे शिव शर्मा ने दवा दी, लेकिन उस रात बा लगातार बेचैन रहीं।

पंडित शिव शर्मा का इलाज शुरू हो गया, लेकिन उन्हें आगा खाँ महल में रहने की सुविधा नहीं मिली। रात में या बेवक्त जब बा की तबीयत बिगड़ती, तो टेलीफोन करके उन्हें बुलाना होता। १२ व १४ नवम्बर की रात को वे आगा खाँ महल के बाहर अपनी मोटर में ही सोये, क्योंकि भीतर सोने की इजाजत नहीं थी, और कस्तूरबा को छोड़कर वे जा नहीं सकते थे।

१४ फरवरी को गाँधीजी ने इन्स्पेक्टर जनरल को चिट्ठी लिख-कर कहा कि कल रात वा इतनी नाजुक थीं कि मुझे लगा कि वे जा रही हैं। डाक्टर असहाय थे। तब डा: नैयर ने सुपरिंटेंडेंट (कटेली) को उठाया, और उन्होंने वैद्यराज को टेलीफोन किया। तब रात के एक बज रहे थे। अगर वे पास ही होते तो तुरन्त राहत मिलती। क्या आप उन्हें महल में रहने की इजाजत भी नहीं दे सकते? जब आपने वैद्य इलाज के लिए भेजा है, और उसके इलाज की जिम्मेदारी मैंने ली है, और बाकी सारे इलाज बन्द हैं, तो कम से कम वैद्य को उपस्थित तो रहने दीजिए।

१६ फरवरी को गाँधीजी ने फिर लिखा कि तीन रात से वैद्य बाहर अपनी मोटर में सोते हैं, और रोज़ रात को एक बार बुलाए जाते हैं। सारा महल का स्टाफ इस कारण एक दो बार जगाया जाता है। जब तक वैद्य रहें, तब तक सुपरिंटेंडेंट और उनके स्टाफ को भी जगना पड़ता है। वैद्य क्षण-क्षण दवा बदलते हैं। डा. नैयर और गिल्डर हैं जरूर, लेकिन दवा उनकी चल नहीं रही है। इसलिए मेरा सुझाव है कि (१) वैद्यराज को दिन रात महल में रहने दिया जाए; अथवा (२) मरीज को पेरोल पर रिहा कर दिया जाए ताकि पूरा इलाज हो सके; अथवा (३) मुझे इस जगह से हटाकर और कहीं भेज दिया जाए, ताकि मैं मरीज की यातना का असहाय दर्शक न बना रहूँ यह पत्र मैं रात के दो बजे लिख रहा हूँ जब वह मौत व जिन्दगी के बीच झूल रही है।

आखिर १७ फरवरी की रात को वैद्यराज को महल में रहने की अनुमति मिली। लेकिन वा को लाभ नहीं हो रहा था। दमा था, बुखार था, और पेशाब नहीं उतर रहा था। १८ फरवरी को पंडित शिव शर्मा ने कह दिया कि मैंने सारे प्रयत्न कर लिये हैं, अब आप डाक्टरी इलाज शुरू कर दीजिए। उस दिन पता चला कि बा को फेफड़ों में निमोनिया है।

२० फरवरी को बा की तवीयत वहुत ही बिगड़ गई। करुण स्वर में वे हे राम, हे राम चिल्लाने लगीं। बापू बा की खाट पर प्रार्थना करने लगे। रामधुन और भजन दिनभर होते रहे। शाम को वे एनीमा माँगने लगीं। गाँधीजी ने तब तक आशा छोड़ दी थी। कहने लगे, "अव बा का दवा रामनाम ही है। दूसरा सब उपचार छोड़ दो। वा जाए, तो भले। वा की व्यथा का दृष्य करुण है, मगर मुझे बहुत प्रिय है। बस रामधुन के सिवा उसे चैन नहीं। मैं दवा को मानता ही नहीं। लड़कों की कैसी कैसी बीमारी में भी मैंने दवा नहीं दी। वा के बारे में मैंने ऐसा नहीं किया। अव समय आ गया है कि अव तो दवा छोड़ूँ। ईश्वर को वचाना होगा, तो ऐसे ही वचा लेगा।"

लेकिन कस्तूरबा दवा और रामनाम दोनों को रट रही थीं। दिन भर वे अरंडी का तेल माँगती रही, और नहीं मिला तो नाराज रहीं। डॉ. सुशीला नैयर ने पेनिसिलीन मँगवाने को कहा। यह उस समय एक नई दवाई थी, जो वहुत दुर्लभ थी। डॉ. भंडारी ने खोजा, लेकिन फौजी अस्पताल में भी वह नहीं मिली। ड़ॉ. विधानचन्द्र राय थे नहीं, जो कहीं से खोज लाते। गाँधीजी पेनिसिलीन के खिलाफ थे। लेकिन कहने लगे कि देवदास गाँधी आदि को जो जंचे सो करो। दवा अंत तक चलती रही। २१ फरवरी को भी बा जा रही थीं। उनकी नाड़ी ऊँची-नीची थी, और कमरें में गीतापाठ व रामधुन चल रहे थे। देवदास से मिल कर वा रोने लगीं। पानी और शहद लेना भी उन्हें अव भारी पड़ रहा था। विस्तर में पाखाना कर दिया, और कुछ भान ही नहीं रहा। मानसिक स्थिति भी उनकी ठीक नहीं थी।

२२ फरवरी को सुबह फल के रस का नाश्ता करने के बाद गाँधीजी घूमने नहीं गए। वा ने रोक दिया। दो घंटे तक कस्तूरबा बापू की गोद में लेटी रहीं। गिल्डर बोले "यह दृष्य तो चित्र लेने लायक है।"

देवदास गाँधी टॉटेनहम से मिले थे। गृह सचिव ने कहा कि कस्तूरबा को छोड़ने का अर्थ गाँधीजी को छोड़ना होगा, और वह सरकार करना नहीं चाहती।

उस दिन देवदास गाँधी पेनिसिलिन ले आए और कस्तूरबा के चित्र उतारने के लिए एक कैमरा भी। गाँधीजी दुखी थे कि मरते मरते बा को सुइयाँ चुभोई जाएँगी। दूसरे लोग चाहते थे कि साँस है तब तक उपाय किया जाए। झिझक चल रही थी। डॉ० नैयर और गिल्डर इंजेक्शन देना चाहते थे, लेकिन बापू के कारण कुछ ढुलमुल थे। बापू ने देवदास गाँधी से कहा कि तुम चाहते हो तो पेनिसिलीन दे दो लेकिन मेरी राय नहीं है। उसे भगवान के हाथों छोड़ दो।

शाम लगभग साढ़े सात बजे कस्तूरबा ने करुण स्वर में पुकारा—बापूजी! वे घूमने जा रहे थे। उन्हें बुलाया गया। बा बहुत बैचेन थी। नाड़ी कमजोर थी।

बा ने अन्तिम बार उठने की कोशिश की, और बापू की गोद में पड़ गई। आँखें पथरा गईं, और गले में घड़घड़ाहट शुरू हो गई। चन्द क्षणों में वे चली गईं।

बापू ने आँखें बन्द कर ली।

शव के बारे में गाँधीजी ने तीन प्रस्ताव रखे: (१) सबसे अच्छा यह हो कि शव मेरे लड़कों व रिश्तेदारों को सौंप दिया जाए और सार्वजनिक अन्त्येष्टि हो। (२) यह न हो तो दाहक्रिया महल में ही हो, और रिश्तेदार व मित्र सभी उसमें शामिल हो सकें। सिर्फ रिश्तेदारों का आना मुझे स्वीकार नहीं है। (३) यह भी संभव न हो, तो जो लोग मेरे साथ नजरबन्द हैं, उन्हीं के सामने दाह हो।

इस बार भी बा की बीमारी और मृत्यु का राजनैतिक लाभ उठाने से गाँधीजी ने इंकार कर दिया।

दूसरे दिन सुबह साढ़े दस बजे लगभग १५० मित्रों व रिश्तेदारों की उपस्थिति में महादेव देसाई की समाधि के पास कस्तूरबा का अंतिम संस्कार हुआ। वे ही ब्राह्मण फिर आए। लकड़ी का सहारा लिये बापू खड़े रहे, फिर एक कुर्सी पर बैठ गये। साढ़े चार बजे सब लौटे,

और बिदा हुए । वही भजन, वही पाठ, वही दृष्य, जो आगाखाँ महल १५ अगस्त को भी देख चुका था ।

आगा खाँ महल में गाँधीजी के तीन पुत्रों का बहुत दिनों बाद संगम हुआ । देवदास, रामदास और हरिलाल–जिन्हें गाँधीजी ने लगभग खो दिया था–इन दिनों एक साथ बैठे । मौत के साये के दिनों में गाँधीजी ने हरिलाल से आत्मीयता से बातें कीं । कस्तूरबा को कुढ़न होती कि सरकार देवदास को तो आने जाने की बहुत सहूलियतें देती थीं, जबकि हरिलाल को कुछ मिनिट ही मिलते । पुत्रों के बीच यह भेदभाव क्यों ? वे कहतीं ।

कस्तूरबा की मृत्यु के बाद गाँधी बहुत खिन्न और विषण्ण हो गए । एक शाम कहने लगे "मेरा मन बा को छोड़ कर और किसी चीज का विचार ही नहीं करता । आज डॉन में एक लेख पढ़ते-पढ़ते मुझे लगा कि वैवल कौन है, वाइसराय है या और कोई ?"

लेकिन गाँधीजी को इस बात से अपार हर्ष था कि कस्तूरबा रामनाम जपते हुए उनकी गोद में मरीं । इस तथ्य से वे अक्षरशः पुलकित थे । लेकिन ६२ साल की सहयोगिनी खोकर वे विमूढ़ भी हो चुके थे । बा की मेज, बा का बिस्तरा, बा का मिट्टी बाँधने वाला पट्टा, सब उनके लिये मूल्यवान हो उठे ।

मार्च और अप्रैल भर गाँधीजी का सरकार के साथ कर्कश पत्र व्यवहार चलता रहा । सरकार कहती थी कि कस्तूरबा के इलाज के लिये सारी सुविधाएँ तत्काल उपलब्ध कराई गईं । गाँधीजी कहते थे कि सारी इजाजतें हफ्तों बाद मिलीं, जिससे कस्तूरबा की तबीयत बिगड़ती चली गई । सरकार कहती थी कि गाँधीजी ने खुद महल में अन्त्येष्टि चाही, और गाँधीजी कहते थे कि अगर सार्वजनिक दाह संस्कार की इजाजत होती तो क्या मैं पागल था, जो महल में चिता बनवाता । सरकार कहती कि कस्तूरबा पेरोल पर रिहा नहीं होना चाहती थीं, और ऐसा उन्होंने देवदास से कहा भी था । हमने बा की

मनः स्थिति समझ कर उन्हें रिहा नहीं किया। गाँधीजी कहते थे कि आप रिहाई का प्रस्ताव तो रखते। फिर उसे ठुकराने की जिम्मेदारी आप मुझ पर या कस्तूरबा पर डाल सकते थे। लेकिन हो सकता है हम रिहाई मंजूर कर लेते, और बाहर जाकर बा वच जातीं। अन्त में सरकार ने कहा कि आप तो फिलहाल दुखी हैं, और सरकार ने आपके खातिर जो किया है, उसे पहचानने की मन:स्थिति में आप नहीं हैं। अतः इस पत्रव्यवहार को जारी रखने में कोई अर्थ नहीं है।

कस्तूरबा की बीमारी के दिनों में ही गाँधीजी ने लार्ड वैवल से राजनैतिक पत्र व्यवहार भी शुरू किया। बा की मृत्यु पर वैवल ने शोक संदेश भेजा। इसके जवाव में गाँधीजी ने अजनबी लार्ड वैवल को लिखा "हम एक असाधारण दम्पति थे। १९०६ में हमने परस्पर सहमति से आत्म संयम स्वीकार किया, और हम एक दूसरे से इस प्रकार बँध गए, जैसे पहले कभी नहीं थे। हम दो प्राणी रहे ही नहीं। मेरा आग्रह नहीं था लेकिन उसने मेरे अन्दर अपने आपको खोना पसंद किया। वह सचमुच मेरा श्रेष्ठतम अर्द्धांग वन गई। शुरू में जिसे मैं अड़ियलपन समझता था, वह सचमुच उसका सत्याग्रह था," आदि आदि।

अपनी पत्नी के बारे में यह आत्मीय विवरण इस पत्र में कुछ अटपटा लगता है। गाँधी ने यह क्यों लिखा? महल में गाँधी वताने लगे: "आम तौर पर लोग मानते हैं कि हिन्दुतानियों को अपनी पत्नी की पर्वाह नहीं होती। पत्नी की पर्वाह हिन्दुस्तान में कुछ हद तक एक नई चीज है। मेरे लिए वा की कितनी कीमत थी यह वताने के बाद मैं वैवल को यह समझा सकता था कि उसके झूठ से मुझे दुःख हुआ।"

१९४४ में गाँधीजी की ७५ वीं वर्षगाँठ पर एक फंड इकट्ठा करने की चर्चा चल रही थी। ४ मार्च को गाँधीजी ने कनु से कहा कि फंड कस्तूरवा के नाम पर इकट्ठा किया जाए। कहने लगे कि दोनों फंड साथ मिला दो, क्योंकि बा मुझमें समा गई है।

१४ अप्रैल को गाँधी को मलेरिया ने दबोच लिया। ठण्ड से काँपने लगे, और १०३·६ डिग्री बुखार चढ़ गया। लेकिन कुनीन नहीं ली। कहने लगे कल परसों बुखार आया, तो हुज्जत नहीं करूँगा। बस फल और मौसम्बी का रस, या नींबू का पानी और शहद लेते रहे। आखिर १६ अप्रैल को तीन ग्रेन कुनीन ली। तब तक बुखार का उनके दिमाग पर भी असर होने लगा था। एक बार काफी हँसने और मजाक करने लगे। कुनीन खाते जाते और हँसते जाते। कभी-कभी उनके वाक्य जबान से फिसल जाते।

एच. वी. आर. आय्यंगर ने, जो उस समय बम्बई सरकार के सचिव थे, गाँधीजी की बीमारी की बड़ी चिन्ताजनक तस्वीर अपने संस्मरणात्मक लेखों में खींची है, जो कुछ वर्ष पहले इंडियन एक्सप्रेस में छपे थे। आय्यंगर ने लिखा कि सरकार की रिपोर्ट के अनुसार गाँधीजी का दिमाग भी कमजोर होता जा रहा था। कभी वे पूछ बैठते कि महादेव देसाई क्या कर रहे हैं, और तब उन्हें याद दिलानी पड़ती कि वे मर चुके हैं। सरकार को भय था कि गाँधीजी के अवयवों को यदि कोई स्थायी क्षति हुई तो सरकार पर स्थायी कलंक लग जाएगा।

गाँधीजी मानसिक दुर्बलता के शिकार हो रहे थे, यह सही है। लेकिन उनकी हालत चिन्ताजनक थी अथवा उनके स्मृति नाश का कोई खतरा था, इसकी पुष्टि नहीं होती। डॉ. नैयर की डायरी में इसका कोई संकेत नहीं है। हाँ, बीमारी के एक हफ्ते के बाद गाँधीजी ने कहा, "आज मैं टूट गया हूँ। मैं मानता था कि मुझे मलेरिया कभी नहीं आएगा, मगर मेरा वह घमंड दूर हुआ। जिसका अपने मन पर पूरा काबू है, जिसका मन पूर्णतः स्वस्थ है, वह बीमार पड़ नहीं सकता। मैं कहाँ हूँ, यह नहीं जानता, मगर अपने आपको जहाँ मानता था, वहाँ तो नहीं हूँ। इस विचार ने मुझ पर काबू पा लिया है। मेरे मन की कैसी दयाजनक स्थिति है, वह तुम लोग नहीं जानते हो।"

बीमारी गाँधी को अपराध लगती थी, और मलेरिया से पीड़ित होकर वे अपराध भावना से ग्रस्त हो गए।

डॉ. मदनगोपाल भंडारी से (जो अब अवकाशप्राप्त हैं और बम्बई में रहते हैं) जब पूछा गया कि क्या गाँधीजी का मस्तिष्क क्षीण होने लगा था, तो उन्होंने बताया कि ऐसी कोई बात नहीं हुई। आय्यंगर के लेखों को उन्होंने देखा था और वे उनसे सहमत नहीं थे।

१६ अप्रैल को बापू को १०४.८ डिग्री बुखार था। वे बुखार की बेहोशी में बोल रहे थे। सिर और पेट पर ठण्डी पट्टी रखी गई। डॉ. गिल्डर और नैयर ही सारा इलाज कर रहे थे। कुनीन रोज लेते थे। इससे उनका सिर चकराता और कम सुनाई देता। १८ अप्रैल के बाद गाँधी को बुखार नहीं आया लेकिन कमजोरी बनी रही। कुछ दिन बाद बापू समाधि पर फूल चढ़ाने जाने लगे। आधे घंटे तक घूमते। फिर भी २८ अप्रैल को उन्हें एक रक्त चिकित्सक डॉ. नरोन्हा ने देखा, और २९ को यूरिया क्लीयरेंस टेस्ट के लिए डॉ. गज्जर बम्बई से आए। जनरल कैंडी भी उसी दिन आए।

इस बीमारी के दौरान भी गाँधीजी ने एक पत्र (२१ अप्रैल) लिख कर सरकार से आग्रह किया कि हमें किसी कम खर्चीले जेल में भेज दिया जाए।

डाक्टरों ने निर्णय किया कि गाँधीजी को मेक्रोसिटिक एनीमिया है। ३ मई की एक विज्ञप्ति में सरकार ने कहा : "गाँधीजी की रक्तहीन स्थिति में बिगाड़ हुआ है और रक्तचाप गिरा है। उनकी स्थिति से चिन्ता हो रही है।" डॉ. गज्जर की रिपोर्ट छपी कि गुर्दे ठीक तरह काम नहीं कर रहे हैं। १ मई को डॉ. विधानचन्द्र राय बापू को देखने आए। २ मई को भंडारी ने रहस्यमय ढंग से कहा कि जेल-परिवर्तन पर विचार किया जा रहा है। बाद में डॉ. गिल्डर से पूछा कि क्या बापू १०० मील का सफर मोटर में कर सकेंगे? लोगों ने सोचा शायद अहमदनगर ले जा रहे हों, जहाँ सारी कांग्रेस कार्यकारिणी थी।

रिहाई इस समय गाँधी के लिए स्वागतयोग्य नहीं थी । बोले "बीमार होकर निकलना मुझे चुभता है। सत्याग्रही को वह शोभा नहीं देता । आज की परिस्थिति में मैं निकल कर करूँगा भी क्या ?"

३ मई को एक पत्र लिख कर गाँधीजी ने कहा कि बीमारी से उठने में लगता है बहुत लम्बा समय लगेगा । इसलिए सरकार अगर मुलाकात देना चाहे तो सिर्फ रिश्तेदारों से काम नहीं चलेगा । अपने आश्रम के सदस्यों को भी मैं रिश्तेदारों के बराबर मानता हूँ। इसलिए उपवास के समय की तरह इस बार भी सबको मिलने की इजाजत दी जाए ।

५ मई को शाम भंडारी महल में आए, और गाँधीजी के पास बैठ गए । उन्होंने कहा, "कल सुबह आठ बजे आप लोगों को छोड़ दिया जाएगा ।" सब लोग हैरान हो गए । बापू बोले, "आप लोग मजाक तो नहीं कर रहे हैं ।" वे घबरा से गए थे । जिस आदमी को सरकार ने उपवास में नहीं छोड़ा, कस्तूरबा की बीमारी में नहीं छोड़ा, वह अपनी बीमारी के निमित्त छूट जाए, यह उन्हें अखर रहा था ।

भंडारी बोले : अब दया करके फिर वापस न आइए । देखिए, चिन्ता के कारण मेरे तो बाल भी सफेद हो गए हैं ।

गाँधीजी को उन्होंने सलाह दी कि आप चाहें तो कुछ दिन इस महल में भी रह सकते हैं। सुबह आठ बजे सिपाही हटा लिए जाएँगे । लेकिन मेरी सलाह है कि आप पूना या बम्बई रहें । यह फौजी इलाका है, और जनता आपके दर्शनों को आई, तो कोई मुठभेड़ हो सकती है, जिसे आप पसन्द नहीं करेंगे ।

गाँधीजी ने कहा : पूना से मेरे रेल किराये का क्या होगा? भंडारी ने कहा कि जब आप पूना से बिदा होंगे, तब वह आपको मिल जाएगा ।

उस दिन रात भर सामान बँधता रहा । पौने पाँच बजे उठे । स्नान के बाद प्रार्थना हुई । फिर महादेव देसाई और कस्तूरबा की समाधि पर गए । ईशावास्यमिदं सर्वं, असतोमा सद्गमय, अउज

बिल्ला, मज़दा और गीता का बारहवाँ अध्याय पढ़ा गया। फिर गाँधीजी ने अपना अन्तिम पत्र लिखा जिसमें कहा गया कि समाधि की जमीन को शासन प्राप्त कर ले, ताकि मित्र व रिश्तेदार उसके नियमित दर्शन कर सकें।

सुबह आठ बजे बापू और उनके साथी – प्यारेलाल, डॉ. सुशीला नैयर, मीराबहन, डॉ. गिल्डर, कनु और मनु गाँधी–आगाखाँ महल से रिहा हो गए। वे लेडी प्रेमलीला ठाकरसी के निवास स्थान पर्णकुटीर पहुँचे। तीन दिन तक सब पूना रहे। ६ मई को आगा खाँ महल लौट कर उन्होंने समाधियों को फिर श्रद्धांजलि अर्पित की।

और इस प्रकार महात्मा गाँधी की अन्तिम जेल यात्रा समाप्त हुई।

हमारा गांधीजी-विषयक जीवनी-संस्मरण साहित्य :

१. राष्ट्र-पिता
—जवाहरलाल नेहरू

२. बा, बापू और भाई
—देवदास गांधी

३. गांधी : एक जीवनी
—बी० आर० नन्दा

४. जीवन-प्रभात
—प्रभुदास गांधी

५. गांधीजी की छत्रछाया में
—घनश्यामदास बिड़ला

६. डायरी के पन्ने
—घनश्यामदास बिड़ला

७. बापू के आश्रम में
—हरिभाऊ उपाध्याय

८. मेरे हृदय-देव
—हरिभाऊ उपाध्याय

९. बापू की कारावास-कहानी
—[illegible]शीला नैयर

१०. गांधीजी की [illegible] जेल-यात्रा
—राजेन्द्र माथुर